आत्मधर्म

मासिक : वर्ष-१९ • अंक-७ • मार्च-२०२५

१३वाँ सम्यक्त्व जयंती महोत्सव

ता. २०-३-२०२५, गुरुवार
से
ता. २४-३-२०२५, सोमवार

शुद्धात्मवैभवविलासी धर्मरत्न भगवती माता

पूज्य बहिनश्री चंपाबेन

आगम महासागरके अमूल्य रत्न

● जिसके चित्तका चरित्र उदात्त (उदार, उच्च, उज्ज्वल) है ऐसे मोक्षार्थी इस सिद्धान्तका सेवन करें कि 'मैं तो सदा शुद्ध चैतन्यमय एक परमज्योति ही हूँ और जो यह भिन्न लक्षणवाले विविध प्रकारके भाव प्रकट होते हैं वे मैं नहीं हूँ, क्योंकि वे सभी मेरे लिये परद्रव्य हैं'।८३। (श्री अमृतचंद्राचार्य, समयसार टीका-१८५)

● जो ज्ञानादिके भी रूपमें क्षायोपशमिकभाव है वह भी तत्त्वदृष्टिसे विशुद्ध जीवका स्वरूप नहीं है।८४। (श्री अमितगति आचार्य, गाथा-५८)

● यहाँ कोई प्रश्न करता है कि विभाव परिणामोंको जीवस्वरूपसे 'भिन्न' कहा, वहाँ 'भिन्न'का भावार्थ तो मैं समझा नहीं। 'भिन्न' कहने पर, 'भिन्न' है वह वस्तुरूप है कि 'भिन्न' है वह अवस्तुरूप है? उत्तर ऐसा है कि अवस्तुरूप है। उसी कारणसे शुद्ध स्वरूपका अनुभवशील है जो जीव उसको विभाव परिणाम दृष्टिगोचर नहीं होते। उत्कृष्ट है, ऐसा शुद्ध चैतन्य द्रव्य दृष्टिगोचर होता है।८५।

(श्री राजमलजी, कलशटीका, कलश-३७)

● निश्चयसे विद्यमान गुणस्थान, मार्गणास्थान, द्रव्यकर्म, भावकर्म, नोकर्म इत्यादि जितनी अशुद्ध पर्यायें हैं वे समस्त ही अकेले पुद्गल द्रव्यका कार्य अर्थात् पुद्गल द्रव्यके चित्रों जैसी हैं। ऐसा हे जीव! निःसन्देहरूपसे जानो।८६।

(श्री राजमलजी, कलशटीका, कलश-३९)

● उपयोगसे कषाय और कषायसे उपयोग (उत्पन्न) नहीं होते और मूर्तिक-अमूर्तिकका परस्पर एक-दूसरेसे उत्पाद सम्भव नहीं है।८७।

(श्री अमितगति आचार्य, योगसार प्राभृत, अधि. ३, श्लोक-२१)

● जैसे सोना कुधातुके संयोगसे अग्निके तापमें अनेकरूपमें होता है तो भी उसका नाम सोना ही रहता है तथा सर्राफ कसौटीके ऊपर कसकर उसकी रेखा देखता है और उसकी चमकके अनुसार कीमत लेता-देता है, उसी प्रकार अरूपी महादीप्तिवाला जीव, अनादिकालसे पुद्गलके समागममें नव तत्त्वरूप दिखाई देता है, परन्तु अनुमान प्रमाणसे सर्व अवस्थाओंमें ज्ञानस्वरूप एक आत्मरामके अतिरिक्त अन्य कोई नहीं है।८९।

(श्री बनारसीदासजी, नाटक समयसार, जीवद्वार, पद-९)

वर्ष-19
अंक-7

आत्मधर्म

शाश्वत सुखका मार्ग दर्शानेवाली मासिक पत्रिका

वि. संवत 2080
March
A.D. 2025

सम्यक्त्व बोधदायक रत्न जिनागममेंसे

✻ जिस प्रकार अभेद स्वरूपसे अग्निमें उष्णता रहती है उसी प्रकारसे आत्मामें ज्ञान है, इस प्रकारकी प्रतीतिका नाम शुद्ध सम्यग्दर्शन है और उसी प्रकारसे जाननेका नाम सम्यग्ज्ञान है। इन दोनोंके साथ उक्त आत्माके स्वरूपमें स्थित होनेका नाम सम्यक्चारित्र है।

(श्री पद्मनंदी पंचविंशति)

✻ जो (वस्तुस्वरूपको) न्यूनता रहित, अधिकता रहित, विपरीतता बिना–विपरीतता रहित और संदेह रहित जैसे है वैसा जानते हैं, उन्हें गणधर या श्रुतकेवलीओं सम्यग्ज्ञान कहते हैं।

(श्री रत्नकरंड श्रावकाचार)

✻ जगतके प्राणिओं! इस एक सम्यक्स्वभावका अनुभव करों कि जहाँ यह बद्धस्पृष्ट आदि भाव स्पष्टपनेसे उस स्वभावके ऊपर तैरते हैं तो भी (उसमें) प्रतिष्ठा पाते नहीं, कारण कि द्रव्यस्वभाव तो नित्य है, एकरूप है, और यह भाव अनित्य है, अनेकरूप है, पर्यायें द्रव्यस्वभावमें प्रवेश करती नहीं, ऊपर ही रहती हैं। यह शुद्धस्वभाव सर्वावस्थाओंमें प्रकाशमान है। ऐसे शुद्ध स्वभावका जगत मोहरहित होकर अनुभव करो, कारण कि इस मोहकर्मके उदयसे उत्पन्न मिथ्यात्वरूप अज्ञान जहाँ तक रहता है वहाँ तक यह अनुभव यथार्थ होता नहीं।

(श्री समयसार)

✻ सम्यग्दृष्टि जीवोंको स्वयंके आत्माको जाननेवाला स्वसंवेदन प्रत्यक्षरूप ज्ञान, शुद्ध और सिद्धोंके समान होता है। (श्री पंचाध्यायी)

✻ यह सम्यग्दर्शन ही मोक्षरूपी महलकी प्रथम सीढी है इस सम्यग्दर्शनके बिना ज्ञान और चारित्र सम्यक्पनेको प्राप्त नहीं करते। इसलिये हे भव्य जीवों! ऐसे पवित्र सम्यग्दर्शनको धारण करो। हे समझदार दौलतराम! सुन, समझ और सावधान हो, अपने समयको व्यर्थ न गँवा, यदि सम्यग्दर्शन नहीं हुआ तो यह मनुष्य पर्याय पुनः मिलना दुर्लभ है। (ढहढाला)

* जिस प्रकार किसी पुण्यवान जीवके हाथमें चिंतामणि रत्न होता है, उससे सब मनोरथ पूरा होता है, वह जीव लोहा, तांबा, चांदी ऐसी धातुओंका संग्रह करता नहीं, उसी प्रकार सम्यग्दृष्टि जीवके पास शुद्धस्वरूप अनुभव ऐसा चिंतामणि रत्न है, उसके द्वारा सकल कर्मक्षय होता है। परमात्मपदकी प्राप्ति होती है। अतीन्द्रिय सुखकी प्राप्ति होती है। वह सम्यग्दृष्टि जीव शुभ-अशुभरूप अनेक क्रिया विकल्पका संग्रह करता नहीं, कारण कि उनसे कार्यसिद्धि नहीं होती। (श्री कलशटीका)

* एक ओर सम्यग्दर्शनका लाभ होता हो और दूसरी ओर तीनलोकका राज मिलता हो तो भी तीनलोकके लाभकी अपेक्षा सम्यग्दर्शनका लाभ श्रेष्ठ है। तीनलोकका राज्य पाकर भी उसके निश्चितकाल पश्चात् वहाँसे पतन होगा ही और सम्यग्दर्शनका लाभ होने पर अविनाशी मोक्ष सुख प्राप्त होता है। इससे तीनलोकके लाभकी अपेक्षा सम्यक्त्वका लाभ श्रेष्ठ है।
(श्री भगवती आराधना)

* इस आत्माको अन्य द्रव्योंसे भिन्न देखना (श्रद्धान करना) वही नियमसे सम्यग्दर्शन है। कैसा है यह आत्मा ? स्वयंके गुण-पर्यायोंमें व्यापनेवाला है। और कैसा है ! शुद्धनयसे जो एकपनेमें निश्चित करनेमें आता है और कैसा है, पूर्ण ज्ञानघन है। तथा जितना सम्यग्दर्शन है उतना ही यह आत्मा है। इससे आचार्य प्रार्थना करके हैं कि ''यह नवतत्त्वकी परिपाटीको छोड़कर, यह आत्मा एक तत्त्वरूपमें ही हमें प्राप्त हो।'' (श्री समयसार)

* सम्यग्दृष्टिको कदापि व्याधिके स्थानभूत इन्द्रियविषयमें अत्यंत अनादरभाव असिद्ध नहीं, क्योंकि वह इन्द्रिय-विषय स्वयं ही बाधाके हेतु (निमित्त) है और इसलिये रोगमें और भोगमें कोई अंतर नहीं है। (श्री पंचाध्यायी)

* जो पुरुष सम्यक्त्वरूपी रत्नराशिसे सहित हैं वे पुरुष धन, धान्यादि वैभवसे रहित होने पर भी वास्तवमें वे वैभव सहित ही हैं, और जो पुरुष सम्यक्त्वसे रहित है वे धनादि सहित हो तो भी दरिद्री ही हैं। (श्री उपदेशसिद्धांतरत्नमाला)

* सम्यग्दर्शनकी जो किरण प्रकट होती है और मोक्षके मार्गमें चलती है वह धीरे धीरे कर्मोंका नाश करती हुई परमात्मा बनती है। जिसके चित्तमें ऐसे सम्यग्दर्शनकी किरणका उदय हुआ है उसीका नाम साधक है, जिस प्रकार कि जिस घरमें दीपक जलाया जाता है उसी घर में उजाला होता है। (श्री नाटक समयसार)

* इस जीवको तीनकाल तीनलोकमें सम्यग्दर्शन समान अन्य कोई कल्याण नहीं तथा मिथ्यात्व समान अन्य कोई अकल्याण नहीं है। (श्री रत्नकरंडश्रावकाचार)

प्रशममूर्ति पूज्य बहिनश्री चंपाबेनकी
९३वीँ सम्यक्त्व-जयंती प्रसंग पर
उनके श्रीमुखसे प्रवाहित सम्यक्त्व प्रेरक वचन

❀ स्वानुभूतिका अंतरंग स्वरूप ❀

स्वानुभूतिका अन्तरंग स्वरूप वाणीमें (पूर्ण) नहीं आता। विकल्प छूटकर अन्तरमें आनन्दका वेदन आये वह स्वयं ही अनुभव कर सकता है। अनन्तगुणोंसे भरा हुआ आत्मा है उसमें उसका उपयोग स्वानुभूति होनेपर लीन हो जाता है और विकल्प छूट जाते हैं। विकल्पकी आकुलता छूटकर उपयोग स्वरूपमें जम जाय ऐसी स्वानुभूति वचनमें अमुक प्रकारसे आती है, बाकी तो जो वेदन करे वह जान सकता है। वह दशा होनेपर समूची दिशा बदल जाती है। जो बाहरकी–विभावकी दिशा थी वह पलटकर स्वभावकी दिशामें, विकल्प छूटकर निर्विकल्प ऐसी किसी दूसरी दुनियामें चला जाता है। इस विभावकी दुनियामें नहीं, किन्तु अलौकिक दुनियामें वह चला जाता है और स्वभावमें तल्लीन–एकदम लीन हो जाता है। जैसा स्वभाव है उसी प्रकारकी परिणति स्वानुभूतिमें हो जाती है। वह अनुभूति वेदनमें आती है इसलिये जानी जा सकती है, वेदन की जा सकती है परन्तु कही नहीं जा सकती। आनन्दसे–ज्ञानसे भरपूर चैतन्य चमत्कारी देव स्वयं विराजमान है उसकी स्वानुभूति होती है। जैसा सिद्ध भगवान्‌को आनन्द है उसका अंश स्वानुभूतिमें आता है। उस काल अनुपम गुणका भंडार, अनुपम आनन्दसे भरा हुआ आत्मा अनुपम आनन्दका वेदन करता है। विभावदशामें आनन्द नहीं है क्योंकि वहाँ ज्ञान आकुलतामय है; जब कि स्वानुभूतिमें निराकुलस्वरूप आत्मा, अनुपम आनन्दसे भरपूर ऐसे अपने आत्माका वेदन करता है।

❀ सम्यग्दर्शन कैसे प्रकट होता है ? ❀

सम्यग्दर्शनका विषय शाश्वत आत्मा, अचलभाव है। उसे ग्रहण करनेसे सम्यग्दर्शन प्रकट होता है। पर्यायें तो सब पलटती रहती हैं। अन्तरमें आत्माको पहिचानना। शाश्वत आत्माको पहिचानकर, भेदज्ञानकी धारा ज्यों की त्यों बनाये रखकर, 'मैं यह चैतन्य हूँ, विभाव मुझसे भिन्न हैं, वे आत्माका मूल स्वरूप नहीं हैं, क्षयोपशमभाव भी अधूरी पर्याय है' ऐसा निर्णय करके एक पूर्ण शाश्वत आत्मा जो कि नित्य अचल है उसे ग्रहण करना। ज्ञान सबका होता है कि यह स्वभाव है, यह विभाव है, परन्तु दृष्टि तो एक आत्मापर रखनी। भेदज्ञानकी धारा प्रतिक्षण अन्तरमें प्रकट हो और ज्ञाताधाराकी उग्रता हो तो विकल्प टूटकर निर्विकल्प स्वानुभूति होती है। स्वानुभूति ही मुक्तिका मार्ग है। अन्तरमें आत्माका कोई अनुपम स्वभाव है। उसका वेदन आये और

स्वानुभूतिमें वृद्धि हो, लीनता बढ़ती जाय तो भूमिका भी वृद्धिगत होती जाती है। वस्तुतः करनेका तो यह है, परन्तु उससे पूर्व तत्त्वविचार, शास्त्राभ्यास, देव–शास्त्र–गुरुकी महिमा आदि आते हैं और वे सब एक आत्माको पहिचाननेके लिये हैं। आत्मा कैसे ग्रहण हो?—ऐसी भेदज्ञानकी धारा बारम्बार प्रकट करनी चाहिये। पहले वह भेदज्ञान भावनारूप होता है, फिर उसकी सहजधारा प्रकट हो तो विकल्प टूटकर निर्विकल्पदशा प्रकट होनेका प्रसंग आता है। जो अचल शाश्वत भाव है वही 'मैं' हूँ।—इसप्रकार अन्तरमें द्रव्यपर दृष्टि होनी वही मुक्तिका मार्ग है।

❀ ज्ञानीके सभी भाव ज्ञानमय है ❀

ज्ञानीकी दृष्टि बदल गई है, इसलिये उसके समस्त भाव ज्ञानमय हैं; जबकि अज्ञानीकी दृष्टि बिलकुल विपरीत होनेसे, उसके जितने भाव होते हैं वे सब अज्ञानमय हैं। अज्ञानीके शुभभावमें भी अंतरंग भ्रांति साथ होती है (शुभभाव भी विभाव है, वह ऐसा) नहीं समझता इसलिये एकत्वबुद्धि करता रहता है। (और उस कारण) जो नहीं समझता उसके समस्त भाव अज्ञानमय हैं। जब दृष्टि यथार्थरूपसे बदल जाये, भेदज्ञान हो जाय, तभी ज्ञानमय भाव कहे जाते हैं; तबतक जिज्ञासाकी भूमिकामें भी ज्ञानमय भाव कहा नहीं जा सकता, क्योंकि एकत्वबुद्धि विद्यमान है। जिज्ञासुको रस तो मंद पड़ा है; परंतु सर्व ज्ञानमय भाव कब होते हैं? कि जब भेदज्ञानकी–ज्ञातापनेकी धारा हो तब सर्वभाव ज्ञानमय होते हैं और ऐसा न हो तबतक सर्वभाव एकत्वबुद्धिरूप हैं इसलिये वे सब अज्ञानमय कहे जाते हैं। जिज्ञासु जीव छूटनेकी भावना करता है, परंतु अभी एकत्वपरिणति हो रही है, एकत्वबुद्धि है और दिशा परिवर्तित नहीं हुई है। यदि दृष्टिका एक घड़ा सीधा हो जाय तो सब (भावके) घड़े सीधे हो जाते हैं। एक दृष्टिका घड़ा औंधा होनेसे सब घड़े औंधे ही रहते हैं।

❀ सम्यग्दर्शन प्राप्त होने पर अंतरमें क्या होता है? ❀

चैतन्य जो कि भिन्न था वह भिन्न स्वरूपसे परिणमित हो गया, संसारसे पृथक् हो गया। उसकी सम्पूर्ण परिणति ही दुनियासे न्यारी हो गई। विभाव तथा स्वभावदशामें अंधकार–प्रकाश जितना अन्तर हो गया। जो मार्ग सूझ नहीं रहा था वह मिल गया। मार्ग तो मिल गया, परन्तु करनेका अभी बाकी है। अभी अंतरमें स्वयं अपनेरूप–पूर्णतारूप सहज परिणमित हो जाय वह करना बाकी है।

❀ सम्यग्दृष्टिको कोई स्पृहा नहीं है ❀

जिसे सम्यग्दर्शन प्रकट होता है उसकी एकत्वबुद्धि टूट जाती है इसलिये उसे जगत्की कोई स्पृहा नहीं है, बाह्यकी कोई अपेक्षा नहीं है; रागके किसी विकल्पमें रस नहीं है, जगत्के

किसी पुण्यतत्त्वके प्रति रस नहीं है; स्पृहा मात्र छूट गई है। ज्ञानीको एकत्वबुद्धिपूर्वक किसी प्रकारकी स्पृहा नहीं है। यद्यपि पुरुषार्थकी मन्दताके कारण आचरणमें अल्प स्पृहा रहे वह अलग बात है; परन्तु श्रद्धामें तो पहलेसे उसने नव–नवकोटिसे सर्वका त्याग किया है। नव–नव कोटिसे विभाव मुझे नहीं चाहिये; उच्चसे उच्च शुभभावके विकल्पोंको भी मन–वचन–कायासे छोड़ता हूँ। मुझे वे नहीं चाहिये, नहीं चाहिये।—इसप्रकार पहले श्रद्धामेंसे, पश्चात् आचरणमेंसे भी विकल्प छूट जाते हैं। अस्थिरताके कारण ज्ञानी भले ही किन्हीं बाह्य आचरणोंमें खड़े हों, परन्तु वे सर्व आचरण तिलांजलिरूप हैं। मुझे उनके प्रति कोई स्पृहा नहीं है, किसी विकल्पका अंश मात्र भी मेरा नहीं है। स्वरूपके गुण–पर्यायोंके विचारोंमें रुकना भी मुझे नहीं पुसाता।

❀ ज्ञानी चौबीस घंटे क्या करते है ? ❀

ज्ञानीको चौबीसों घंटे ज्ञायकका आश्रय तथा उसकी परिणति बनी रहती है। उसका उपयोग (उसकी) दशाके प्रमाणमें बाह्यमें जाता है। सम्यग्दृष्टि गृहस्थदशामें हो तो गृहस्थीके कार्योंमें उसका उपयोग जाता है, परंतु उसकी परिणति तो निरंतर चैतन्यके आश्रित ही रहती है। उसने चैतन्यका ही आश्रय लिया है, बाह्यका आश्रय छूट गया है। भले ही बाह्य क्रियायें होती रहें, परंतु आश्रयके लिये तो चैतन्यगृह मिल चुका है। जैसे अपने घरमें खड़ा हुआ व्यक्ति अपने घरको नहीं छोड़ता, निरंतर अपने घरमें ही स्थित रहता है। घरके बाहर अनेक लोग आयें, उनके साथ बोले–चाले, सर्व प्रकारका व्यवहार करे, परंतु स्वयं अपने घरको छोड़कर कहीं नहीं जाता, घरमें ही स्थित है। उसी प्रकार ज्ञानीको चौबीसों घंटे चैतन्यका आश्रय नहीं छूटता। उपयोग बाहर जाता है, सब व्यवहार करता दिखाई देता है, देव–शास्त्र–गुरुकी पूजा–भक्ति आदि कार्योंमें संलग्न दिखाई देता है, परंतु आश्रय तो चैतन्यका ही है।

❀ प्रथम द्रव्यदृष्टि होती है या व्यवहार ? ❀

जहाँ द्रव्यदृष्टि मुख्य और यथार्थ हो वहाँ यथार्थ व्यवहार आ जाता है। द्रव्यदृष्टिके साथ यथार्थ व्यवहार रहता है; यदि वह छूट जाय तो दृष्टि ही सम्यक् नहीं है। सम्यग्दृष्टि–यथार्थदृष्टि हो तो उसके साथ यथार्थ ज्ञान और यथार्थ स्वरूपरमणता होती है। ज्ञायकपर दृष्टि जानेके साथ ही पूर्ण मुक्ति और पूर्ण वेदन नहीं हो जाता, परंतु अभी अपूर्णता है और तबतक व्यवहार होता है। मुमुक्षुदशामें (प्रथम) उसे निर्णय करना चाहिये कि 'मैं स्वभावसे निर्मल हूँ' साथ ही भेदज्ञानका अभ्यास करे कि 'मैं भिन्न हूँ' इसप्रकार एकत्वबुद्धिसे छूटनेका प्रयत्न करना चाहिये। प्रयत्न और दृष्टि साथ होते हैं और भावनामें भी ऐसा होना चाहिये। प्रथम जैसा स्वभाव है वैसा ही ग्रहण करे, फिर पर्यायमें जो अपूर्णता और अशुद्धता है उन्हें हटाकर शुद्धताका प्रयास करता है।

❀ आत्माकी महिमा कैसे आये ? ❀

महिमा अर्थात् आत्माकी अद्भुतता लगनी चाहिये, आश्चर्य लगना चाहिये कि यह कोई अद्भुत तत्त्व है! मेरा आत्मा कोई सामान्य नहीं है, सिद्धभगवान् जैसा है और सर्व लोकके ऊपर तैरता है, ऐसा मैं अद्भुत हूँ! जहाँ रुचि हो, उपयोग वहीं लगता है। जिसको भगवान्की महिमा होती है कि भगवान् वीतरागस्वरूप हैं, उसे जिनमंदिरमें भी भगवान्के दर्शन करते समय भगवान्की प्रतिमाको देखकर आश्चर्य लगता है कि कैसा भगवान्! ठीक उसी प्रकार चैतन्यभगवान्का आश्चर्य लगना चाहिये कि मेरा वीतरागी आत्मा भी ऐसा ही है! फिर वह (आश्चर्य) छूटता नहीं। आत्माकी महिमा लगे तो उसे देखनेके लिये उपयोग बारम्बार वहीं जाये; किन्तु महिमा न आये तो 'मैं ज्ञानस्वरूप हूँ' ऐसा छूट जाता है। भगवान्की महिमा लगे तो मंदिरमें प्रतिमाजीको देखकर शान्ति होती है कि भगवान् कैसे वीतराग हैं!! ऐसे आत्मभगवान्की महिमा आनी चाहिये। प्रतिमाजी ऐसी हैं तो साक्षात् भगवान् कैसे होंगे!!—ऐसे साक्षात् भगवान्की महिमा आये वैसे आत्मभगवान्की महिमा आनी चाहिये। यदि चित्त वहाँ ही लगे तो अन्यत्र कहीं भी नहीं लगता।

❀ सम्यग्दर्शन हुआ वह ही सच्चा जैन ❀

सम्यग्दर्शन होनेके पश्चात् ही सच्चा जैन कहलाता है। सम्यग्दर्शन न हो तबतक भावना भाये, विचार करे कि मैं ज्ञायक हूँ, यह राग मेरा स्वरूप नहीं है, शरीर मैं नहीं हूँ, विभाव मेरा स्वभाव नहीं है, ऐसे उससे भेदज्ञान करे। ज्ञान–दर्शन–चारित्रके विकल्प बीचमें आते हैं परन्तु वह सब राग है; उस रागसे भी भिन्न मैं चैतन्य अखंड द्रव्य हूँ, ऐसे अपने ज्ञायकके भिन्न अस्तित्वका विचार करे। इस ज्ञायकमें अनन्त गुण हैं, उनकी पर्यायें परिणमती हैं। वैसे विचार करके ज्ञायकका निर्णय करे। जबतक सम्यग्दर्शन प्रकट न हो तबतक उसीका विचार, पठन, लगन एवं महिमा करता रहे, देव–शास्त्र–गुरुकी महिमा करता रहे।

❀ समकितीको कैसे आस्रव होता है ? ❀

तीव्र–मंद होते हैं, परन्तु वे कोई ऐसे नहीं होते कि उसका सम्यग्दर्शन छूट जाय, ऐसे आस्रव उसके परिणमनमें नहीं होते। उसकी अंतरंग भूमिका कोई अन्य प्रकारकी होती है। किसी भी रागकी वह इच्छा नहीं रखता, रागको विषरूप मानता है। उसका राग मर्यादित होता है। ज्ञायक ही चाहिये, किसी भी तरह विभाव चाहिये ही नहीं; विभाव हेयबुद्धिपूर्वक है; उच्चसे उच्च शुभभाव भी अपना स्वरूप नहीं है—ऐसी जिसकी परिणति है वहाँ अशुभका उदय कहाँ असर कर सके! उसकी भेदज्ञान-धारा टूटे, ज्ञायककी परिणति टूट जाय, ऐसे कोई उदय उसके पास नहीं होते। उसके पुरुषार्थकी धारा चलती ही रहती है।

अमुक प्रकारकी भूमिका हो तभी सम्यग्दर्शन होता है और टिकता है, नहीं तो सम्यग्दर्शन टिक नहीं सकता। अन्तरमें वैसी पात्रता हो, भीतर विभावका रस छूट जाय, ज्ञायकका रस अन्तरंगसे प्रकट हो, ज्ञायककी ऐसी महिमा आये तभी सम्यग्दर्शन प्रकट होता है। जहाँ सम्यग्दर्शन प्रकट हुआ वहाँ उसकी ज्ञाताधाराको उदय क्या कर सके? (कुछ नहीं कर सकता)

❀ आत्मसाक्षात्कारमें समय लगे तो क्या करें ? ❀

जबतक राग–द्वेष–मोहमें रुका हुआ है तबतक समय लगता है; इसलिये गुरु एवं आचार्य चाहते हैं कि तू पुरुषार्थ करके अपनी ओर जा। तू भेदज्ञान कर। यह राग है वह तेरा स्वरूप नहीं है, द्वेष तेरा स्वरूप नहीं है, तू उनसे जुदा है। तू ज्ञाता है, रागादिका ज्ञाता हो जा, साक्षी बन जा; वह तेरा स्वरूप नहीं है; तू पुरुषार्थ करे तो जो विकल्प हैं वे शान्त हो जायेंगे। भेदज्ञान करके आगे बढ़। पहले राग–द्वेष नहीं छूट सकते; प्रथम उनसे भेदज्ञान हो और स्वभावको पहिचाने कि यह मेरा स्वभाव है, यह सब कषाय मुझसे पृथक् हैं, मैं उनसे पृथक् हूँ—ऐसा भेदज्ञान करे; पश्चात् धीरे–धीरे पुरुषार्थ करके उसमें लीनता करते–करते स्वानुभूतिकी उग्रता करता है।

❀ ज्ञानीकी अंतरंग दशा ❀

ज्ञानीकी अंतरंगदशा कोई अलग ही प्रकारकी है। भेदज्ञानकी सहजधारा निरंतर वर्तती है। ज्ञायककी धारा होनेसे जो–जो विकल्प उठते हैं उन सबसे ज्ञानी भिन्न रहते हैं। ज्ञानी विकल्परूप ज्ञायक नहीं अपितु परिणतिरूप ज्ञायक रहते हैं। जैसे अज्ञानीको अनादिसे एकत्वबुद्धि चल रही है वैसे ही ज्ञानीको भेदज्ञानकी परिणति सहज वर्तती है, सहज पुरुषार्थ रहता है। बाह्यमें सब (गृहस्थजीवन) दिखनेमें आता है, किंतु उनके अंतरंगको ग्रहण करे तो उनकी दशा पकड़नेमें आती है। सम्यग्दृष्टि ज्ञानी बाह्यमें तो गृहस्थाश्रममें रहते हैं लेकिन उनका अंतरंग परिचय हो तो खयालमें आये कि उनका हृदय भीतरमें क्या है? यदि ज्ञानी गृहस्थाश्रममें हों तो उन्हें पहिचानना मुश्किल होता है।

❀ अतीन्द्रिय आनंदमें संवेदन होता होगा ? ❀

वह कोई वाणीमें आये वैसा थोड़े ही है? आत्मा तो अद्भुत है, उसके द्रव्य–गुण–पर्याय कोई निराले हैं। अनन्तकालसे आकुलता थी वह मिटकर, आत्माका निराकुलस्वभाव निर्विकल्पदशामें प्रकट होता है। आत्मा स्वयं आनन्दस्वभावी है अर्थात् आत्मामें आनन्दादि अनन्तगुण हैं और उनमें आत्मा परिणमन करता रहता है; अर्थात् आत्मामें अनेक प्रकारकी क्रियाएँ उत्पन्न होती हैं। तरंगें उठती रहती हैं और उनमें वह केलि करता रहता है, ऐसा आत्माका

स्वभाव है। आत्मामें आनन्दादि अनन्तगुण हैं और उनकी पर्यायोंकी–परिणमनकी तरंगें उठती रहती हैं ऐसा उसका अर्थ है। वैसे तो वाणीमें उसके लिये कोई उपमा नहीं है; सिद्ध भगवान्‌को पूर्ण आनन्द है और इस स्वानुभूतिमें उसका अंश है, परन्तु जाति वही है। आत्मा स्वयं अस्तित्वरूप है, अवस्तु नहीं है तथा वह अस्तित्व जागृत-स्वरूप है। इसलिये जहाँ आकुलतासे छूटा वहाँ आत्मामें जो स्वभाव है वह प्रकट होता है; इसीलिये 'आनन्द-तरंगमें केलि कर रहा था' ऐसा कहा है। उस वाक्यमें गंभीरता है।

❀ स्वानुभूतिकी दशा ❀

वह वचनसे कहनेकी बात नहीं है। स्वानुभूतिमें आनंद-तरंगे उछलती हैं। आत्माका स्वभाव अद्भुत, अपूर्व एवं आश्चर्यकारी है। आत्मामें आनंदगुण हैं, इसलिये स्वानुभूति होनेपर आत्मा आनंद-तरंगोंमें डोलता है। अनंतगुण एवं पर्यायोंसे परिपूर्ण आत्माका जैसा स्वरूप है वैसा स्वानुभूतिमें प्राप्त होता है। स्वानुभूति होनेपर आत्मा जिन आनंद-तरंगोंमें डोलता है वह आनंद जगत्‌से जुदा है, निराला है तथा वह वचनातीत है। यद्यपि ऐसा कहा जाता है कि आत्मा आनंद-तरंगोंमें डोलता है; बाकी तो उसे अनंतगुणोंकी विभूति प्रकट होती है, उसमें वह डोलता है। मुख्यरूपसे (वेदनमें) आनंदगुण है, इसलिये आनंद-तरंगोंमें डोलता है ऐसा कहा जाता है। द्रव्य (सर्वथा) कूटस्थ है, कोई कार्य नहीं करता ऐसा नहीं है। वह परिणमता है, पर्यायोंकी तरंगें उछलती हैं। द्रव्यपर दृष्टि होनेसे उसकी दृष्टि पर्यायके ऊपर नहीं है, परंतु उससे उसे स्वानुभूतिकी पर्याय प्रकट नहीं होती ऐसा नहीं है। पर्यायोंमें आनंदकी तरंगें उछलती हैं और वे वचनातीत हैं, वचनमें आये ऐसी नहीं हैं; द्रव्य–गुण–पर्यायसे शोभित आत्मा अपूर्व है, अद्भुत है एवं आश्चर्यकारी है। अनुभूति होनेपर वह आनंद-तरंगोंमें डोलता है—ऐसा वह जगत्‌से निराला तत्त्व है।

❀ स्वानुभूति प्रकट करनेके लिये क्या करें ? ❀

निर्विकल्पदशा प्रकट हो तब स्वानुभूति होती है। उससे पूर्व मैं ज्ञायक हूँ.....ज्ञायक हूँ—ऐसे बारम्बार ज्ञानमें रटन करते रहना। यह विकल्प आते हैं वे मेरा स्वरूप नहीं हैं; मैं विकल्पोंसे भी पृथक् हूँ; जो मन्द या तीव्र विभाव आते हैं उन सबसे पृथक् मैं चैतन्य हूँ—इसप्रकार बारम्बार उसकी महिमा, लगन तथा अंतरमें रटन रहना चाहिये। मैं ज्ञायक हूँ; विकल्परहित निर्विकल्पतत्त्व हूँ; विकल्पोंके छूट जानेसे मैं कहीं शून्य नहीं हो जाता, परन्तु जो अंतरमें भरा है वह प्रकट होता है। मुझमें अर्थात् ज्ञायकमात्र आत्मामें सब परिपूर्ण भरा है—इसप्रकार बारम्बार उसकी भावना–रटन–विचार–पठन करने जैसा है। ज्ञायकके प्रांगणमें टहेल लगाने जैसी है।

सम्यग्दर्शनका स्वरूप और वह किस प्रकार प्रकट हो ?

१. सम्यग्दर्शन क्या है और उसका अवलम्बन क्या है ?

सम्यग्दर्शन अपने आत्माके श्रद्धागुणकी निर्विकारी पर्याय है। अखण्ड आत्माके लक्ष्यसे सम्यग्दर्शन प्रकट होता है। सम्यग्दर्शनको किसी विकल्पका अवलम्बन नहीं है, किन्तु निर्विकल्प स्वभावके अवलम्बनसे सम्यग्दर्शन प्रकट होता है। यह सम्यग्दर्शन ही आत्माके सर्व सुखका कारण है। 'मैं ज्ञानस्वरूप आत्मा हूँ, बन्धरहित हूँ'—ऐसा विकल्प करना सो, वह भी शुभराग है, उस शुभरागका अवलम्बन भी सम्यग्दर्शनके नहीं है। उस शुभविकल्पको उल्लंघन करने पर सम्यग्दर्शन प्रकट होता है। सम्यग्दर्शन स्वयं राग और विकल्परहित निर्मल गुण है, उसे किसी विकारका अवलम्बन नहीं है, किन्तु समूचे आत्माका अवलम्बन है, वह समूचे आत्माको स्वीकार करता है।

एक बार विकल्परहित होकर अखण्ड ज्ञायकस्वभावको लक्ष्यमें लिया कि सम्यक् प्रतीति हुई। अखण्ड स्वभावका लक्ष्य ही स्वरूपकी सिद्धिके लिये कार्यकारी है। अखण्ड सत्यस्वरूपको जाने बिना, श्रद्धा किये बिना 'मैं ज्ञानस्वरूप आत्मा हूँ, अबद्ध हूँ' इत्यादि विकल्प भी स्वरूपकी शुद्धिके लिये कार्यकारी नहीं हैं। एक बार अखण्ड ज्ञायकस्वभावका लक्ष्य करनेके बाद जो वृत्तियाँ उठती हैं, वे वृत्तियाँ अस्थिरताका कार्य करती हैं, परन्तु वे स्वरूपको रोकनेके लिये समर्थ नहीं हैं, क्योंकि श्रद्धामें तो वृत्ति–विकल्परहित स्वरूप है; इसलिये जो वृत्ति उठती है, वह श्रद्धाको नहीं बदल सकती है। जो विकल्पमें अटक जाता है, वह मिथ्यादृष्टि है। विकल्परहित होकर अभेदका अनुभव करना, वह सम्यग्दर्शन है और यही समयसार है। यही बात निम्नलिखित गाथामें कही है—

कम्मं बद्धमबद्धं जीवे एवं तु जाण णय पक्खं।
पक्खाति क्वंतो पुण भण्णदि जो सो समयसारो॥१४२॥
छे कर्म जीवमां बद्ध वा अणबद्ध ए नयपक्ष छे;
पण पक्षथी अतिक्रांत भाख्यो ते 'समयनो सार' छे. १४२.

'आत्मा कर्मसे बद्ध है या अबद्ध'—इस प्रकार दो भेदोंके विचारमें लगना, वह नयका पक्ष है। 'मैं आत्मा हूँ, परसे भिन्न हूँ;' इस प्रकारका विकल्प भी राग है। इस रागकी वृत्तिको—'नयके पक्षको'—उल्लंघन करे तो सम्यग्दर्शन प्रकट हो। 'मैं बंधा हुआ हूँ अथवा मैं बंध रहित मुक्त हूँ' इस प्रकारकी विचारश्रेणीको उल्लंघन करके जो आत्माका अनुभव करता है सो सम्यग्दृष्टि है और वही समयसार अर्थात् शुद्धात्मा है। मैं अबन्ध हूँ; बन्ध मेरा स्वरूप नहीं है; इस प्रकारके भङ्गकी विचारश्रेणीके कार्यमें जो लगता है, वह अज्ञानी है और उस भङ्गके विचारको उल्लंघन करके अभङ्गस्वरूपको स्पर्श करना (अनुभव करना), वह प्रथम आत्मधर्म, अर्थात् सम्यग्दर्शन है। मैं पराश्रयरहित अबन्ध, शुद्ध हूँ—ऐसे निश्चयनयके पक्षका जो विकल्प

है वह राग है और उस रागमें जो अटक जाता है, (रागको ही सम्यग्दर्शन मान लें; किन्तु रागरहित स्वरूपका अनुभव न करे), वह मिथ्यादृष्टि है।

(२) भेदका विकल्प उठता है, तथापि उससे सम्यग्दर्शन नहीं होता

अनादि कालसे आत्मस्वरूपका अनुभव नहीं है, परिचय नहीं है; इसलिये आत्मानुभव करनेसे पूर्व तत्सम्बन्धी विकल्प उठे बिना नहीं रहते। अनादिकालसे आत्माका अनुभव नहीं है; इसलिए वृत्तियोंका उत्थान होता है कि–मैं आत्मा, कर्मके सम्बन्धसे युक्त हूँ अथवा कर्मके सम्बन्धसे रहित हूँ; इस प्रकार दो नयोंके दो विकल्प उठते हैं, परन्तु 'कर्मके सम्बन्धसे युक्त हूँ अथवा कर्मके सम्बन्धसे रहित हूँ, अर्थात् बद्ध हूँ या अबद्ध हूँ'—ऐसे दो प्रकारके भेदका भी एकस्वरूप में कहाँ अवकाश है? स्वरूप तो नयपक्षकी अपेक्षाओंसे परे हैं। एक प्रकारके स्वरूपमें दो प्रकारकी अपेक्षायें नहीं हैं। मैं शुभाशुभभावसे रहित हूँ; इस प्रकारके विचारमें लगना भी एक पक्ष है, इससे भी उस पार स्वरूप है। स्वरूप तो पक्षतिक्रान्त है, यही सम्यग्दर्शनका विषय है, अर्थात् उसीके लक्ष्यसे सम्यग्दर्शन प्रकट होता है। इसके अतिरिक्त सम्यग्दर्शनका दूसरा कोई उपाय नहीं है।

सम्यग्दर्शनका स्वरूप क्या है? देहकी किसी क्रियासे सम्यग्दर्शन नहीं होता; जड़कर्मोंसे नहीं होता; अशुभराग अथवा शुभरागके लक्ष्यसे भी सम्यग्दर्शन नहीं होता और 'मैं पुण्य-पापके परिणामोंसे रहित ज्ञायकस्वरूप हूँ'—ऐसा विचार भी स्वरूपका अनुभव करानेके लिये समर्थ नहीं है। 'मैं ज्ञायक हूँ', इस प्रकारके विचारमें जो अटका, सो वह भेदके विचारमें अटक गया, किन्तु स्वरूप तो ज्ञाता-दृष्टा है, उसका अनुभव ही सम्यग्दर्शन है; भेदके विचारमें अटक जाना, सम्यग्दर्शनका स्वरूप नहीं है।

जो वस्तु है, वह अपने आप परिपूर्ण स्वभावसे भरी हुई है। आत्माका स्वभाव परकी अपेक्षासे रहित एकरूप है। कर्मोंके सम्बन्धसे युक्त हूँ अथवा कर्मोंके सम्बन्धसे रहित हूँ, इस प्रकारकी अपेक्षाओंसे उस स्वभावका लक्ष्य नहीं होता। यद्यपि आत्मस्वभाव तो अबन्ध ही है, परन्तु 'मैं अबन्ध हूँ' इस प्रकारके विकल्पको भी छोड़कर निर्विकल्प ज्ञाता-दृष्टा निरपेक्ष स्वभावका लक्ष्य करते ही सम्यग्दर्शन प्रकट होता है।

हे प्रभु ! तेरी प्रभुताकी महिमा अन्तरङ्गमें परिपूर्ण है। अनादिकालसे उसकी सम्यक् प्रतीतिके बिना उसका अनुभव नहीं होता। अनादिकालसे पर-लक्ष्य किया है, किन्तु स्वभावका लक्ष्य नहीं किया है। शरीरादिमें तेरा सुख नहीं है, शुभरागमें तेरा सुख नहीं है और 'शुभरागरहित मेरा स्वरूप है,' इस प्रकारके भेदविचारमें भी तेरा सुख नहीं है; इसलिए उस भेदके विचारमें अटक जाना भी अज्ञानीका कार्य है और उस नयपक्षके भेदका लक्ष्य छोड़कर अभेद ज्ञातास्वभावका लक्ष्य

करना, वह सम्यग्दर्शन है और उसीमें सुख है। अभेदस्वभावका लक्ष्य कहो, ज्ञातास्वरूपका अनुभव कहो, सुख कहो, धर्म कहो अथवा सम्यग्दर्शन कहो—वह सब यही है।

(३) विकल्प रखकर स्वरूपका अनुभव नहीं हो सकता।

अखण्डानन्द अभेद आत्माका लक्ष्य, नयके द्वारा नहीं होता। कोई किसी महलमें जानेके लिये चाहे जितनी तेजीसे मोटर दौड़ाये, किन्तु वह महलके दरवाजे तक ही जा सकती है, मोटरके साथ महलके अन्दर कमरेमें नहीं घुसा जा सकता। मोटर चाहे जहाँ तक भीतर ले जाए; किन्तु अन्तमें तो मोटरसे उतरकर स्वयं ही भीतर जाना पड़ता है; इसी प्रकार नयपक्षके विकल्पोंवाली मोटर चाहे जितनी दौड़ाये—'मैं ज्ञायक हूँ, अभेद हूँ, शुद्ध हूँ'—ऐसे विकल्प करे तो भी स्वरूपके आँगन तक ही जाया जा सकता है, किन्तु स्वरूपानुभव करते समय तो वे सब विकल्प छोड़ देने ही पड़ते हैं। विकल्प रखकर स्वरूपानुभव नहीं हो सकता। नयपक्षका ज्ञान उस स्वरूपके आँगनमें आनेके लिये आवश्यक है।

'मैं स्वाधीन ज्ञानस्वरूपी आत्मा हूँ, कर्म जड़ हैं। जड़कर्म मेरे स्वरूपको नहीं रोक सकते। मैं विकार करूँ तो कर्मोंको निमित्त कहा जा सकता है; किन्तु कर्म मुझे विकार नहीं कराते, क्योंकि दोनों द्रव्य भिन्न हैं; वे कोई एक-दूसरेका कुछ नहीं करता। मैं जड़का कुछ नहीं करता और जड़ मेरा कुछ नहीं करता। जो राग-द्वेष होता है, उसे कर्म नहीं कराता तथा वह परवस्तुमें नहीं होता, किन्तु मेरी अवस्थामें होता है। वह राग-द्वेष मेरा स्वभाव नहीं है। निश्चयसे मेरा स्वभाव, रागरहित ज्ञानस्वरूप है।' इस प्रकार सभी पहलुओंका (नयोंका) ज्ञान पहले करना चाहिये, किन्तु जब तक इतना करता है, तब तक भी भेदका लक्ष्य है। भेदके लक्ष्यसे अभेद आत्मस्वरूपका अनुभव नहीं हो सकता, तथापि पहले उन भेदोंको जानना चाहिए, जब इतना जान ले, तब समझना चाहिए कि वह स्वरूपके आँगन तक आया है। बादमें जब अभेदका लक्ष्य करता है, तब भेदका लक्ष्य छूट जाता है और स्वरूपका अनुभव होता है, अर्थात् अपूर्व सम्यग्दर्शन प्रकट होता है। इस प्रकार यद्यपि स्वरूपोन्मुख होनेसे पूर्व नयपक्षके विचार होते तो हैं, परन्तु वे नयपक्षके विचार स्वरूपानुभवमें सहायक तक नहीं होते।

(४) सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञानका सम्बन्ध किसके साथ है?

सम्यग्दर्शन निर्विकल्प सामान्य गुण है, उसका मात्र निश्चय अखण्ड स्वभावके साथ ही सम्बन्ध है, अखण्ड द्रव्य जो भङ्ग-भेद रहित है, वही सम्यग्दर्शनको मान्य है। सम्यग्दर्शन, पर्यायको स्वीकार नहीं करता, किन्तु सम्यग्दर्शनके साथ सम्यग्ज्ञान रहता है, उसका सम्बन्ध निश्चय-व्यवहार दोनोंके साथ है, अर्थात् निश्चय-अखण्ड स्वभावको तथा व्यवहारमें पर्यायके जो भङ्ग-भेद होते हैं, उन सबको सम्यग्ज्ञान जान लेता है। सम्यग्दर्शन एक निर्मल पर्याय है, किन्तु

सम्यग्दर्शन स्वयं अपनेको यह नहीं जानता कि मैं एक निर्मल पर्याय हूँ। सम्यग्दर्शनका विषय अखण्ड एक द्रव्य ही है; पर्याय सम्यग्दर्शनका विषय नहीं है।

प्रश्न—सम्यग्दर्शनका विषय अखण्ड है और वह पर्यायको स्वीकार नहीं करता, तब फिर सम्यग्दर्शनके समय पर्याय कहाँ चली गयी ? सम्यग्दर्शन स्वयं पर्याय है, क्या पर्याय द्रव्यसे भिन्न हो गई ?

उत्तर —सम्यग्दर्शनका विषय तो अखण्ड द्रव्य ही है। सम्यग्दर्शनके विषयमें द्रव्य-गुण-पर्यायका भेद नहीं है। द्रव्य-गुणभेदसे अभेद वस्तु ही सम्यग्दर्शनको मान्य है (अभेद वस्तुका लक्ष्य करने पर जो निर्मल पर्याय प्रकट होती है, वह सामान्य वस्तुके साथ अभेद हो जाती है।) सम्यग्दर्शनरूप जो पर्याय है, उसे भी सम्यग्दर्शन स्वीकार नहीं करता। एक समयमें अभेद परिपूर्ण द्रव्य ही सम्यग्दर्शनको मान्य है; मात्र आत्माको सम्यग्दर्शन तो प्रतीतिमें लेता है, किन्तु सम्यग्दर्शनके साथ प्रकट होनेवाला सम्यग्ज्ञान सामान्य-विशेष सबको जानता है। सम्यग्ज्ञान पर्यायको और निमित्तको भी जानता है। सम्यग्दर्शनको भी जाननेवाला सम्यग्ज्ञान ही है।

(५) श्रद्धा और ज्ञान कब सम्यक् हुए ?

उदय, उपशम, क्षयोपशम अथवा क्षायिकभाव इत्यादि कोई भी सम्यग्दर्शनका विषय नहीं हैं, क्योंकि वे सब पर्यायें हैं। सम्यग्दर्शनका विषय परिपूर्ण द्रव्य है। पर्यायको सम्यग्दर्शन स्वीकार नहीं करता। मात्र वस्तुका जब लक्ष्य किया, तब श्रद्धा सम्यक् हुई, परन्तु ज्ञान सम्यक् कब हुआ ? ज्ञानका स्वभाव सामान्य-विशेष सबको जानना है, जब ज्ञानने सारे द्रव्यको, प्रकट पर्यायको और विकारको तदवस्थ (यथार्थ) जानकर इस प्रकारका विवेक किया कि 'जो परिपूर्ण स्वभाव है, सो मैं हूँ और जो विकार है, सो मैं नहीं हूँ,' तब वह सम्यक् हुआ। सम्यग्ज्ञान, सम्यग्दर्शनरूप प्रकट पर्यायको, सम्यग्दर्शनके विषयभूत परिपूर्ण वस्तुको तथा अवस्थाकी कमीको यथार्थ जानता है।

ज्ञानमें अवस्थाकी स्वीकृति है। इस प्रकार सम्यग्दर्शन तो एक निश्चयको ही (अभेदस्वरूपको ही) स्वीकार करता है और सम्यग्दर्शनका अविनाभावी (साथ ही रहनेवाला) सम्यग्ज्ञान, निश्चय और व्यवहार दोनोंको बराबर जानकर विवेक करता है। यदि निश्चय-व्यवहार दोनोंको न जाने तो ज्ञान प्रमाण (सम्यक) नहीं हो सकता। यदि व्यवहारका लक्ष्य करे तो दृष्टि खोटी (विपरीत) ठहरती है और जो व्यवहारको जाने ही नहीं तो ज्ञान मिथ्या ठहरता है। ज्ञान, निश्चय-व्यवहारका विवेक करता है; इसलिए वह सम्यक् है (समीचीन है) और दृष्टि, व्यवहारके लक्ष्यको छोड़कर निश्चयको स्वीकार करे तो सम्यक् है।

(६) सम्यग्दर्शनका विषय क्या है ? और मोक्षका परमार्थ कारण कौन है ?

सम्यग्दर्शनके विषयमें मोक्षपर्याय और द्रव्य ऐसे भेद नहीं है, द्रव्य ही परिपूर्ण है, वह सम्यग्दर्शनको मान्य है। बन्ध-मोक्ष भी सम्यग्दर्शनको मान्य नहीं। बन्ध-मोक्षकी पर्याय, साधकदशाका भङ्गभेद–इन सभीको सम्यग्ज्ञान जानता है। सम्यग्दर्शनका विषय परिपूर्ण द्रव्य है, वही मोक्षका परमार्थ कारण है। पञ्च महाव्रतादिको अथवा विकल्पको मोक्षका कारण कहना, सो स्थूल व्यवहार है और सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप साधक अवस्थाको मोक्षका कारण कहना भी व्यवहार है, क्योंकि उस साधक अवस्थाका भी जब अभाव होता है, तब मोक्षदशा प्रकट होती है, अर्थात् वह भी अभावरूप कारण है; इसलिए व्यवहार है।

त्रिकाल अखण्ड वस्तु ही मोक्षका निश्चय कारण है, किन्तु परमार्थतः जो वस्तुमें कारण-कार्यका भेद भी नहीं है; कार्य-कारणका भेद भी व्यवहार है। एक अखण्ड वस्तुमें कार्य-कारणके भेदके विचारसे विकल्प होता है; इसलिए वह भी व्यवहार है, तथापि व्यवहारसे भी कार्य-कारण भेद है अवश्य। यदि कार्य-कारण भेद सर्वथा न हो तो मोक्षदशाको प्रकट करनेके लिए भी नहीं कहा जा सकता। इसलिए अवस्थामें साधक-साध्यका भेद है, परन्तु अभेदके लक्ष्यके समय व्यवहारका लक्ष्य नहीं होता, क्योंकि व्यवहारके लक्ष्यमें भेद होता है और भेदके लक्ष्यमें परमार्थ-अभेद स्वरूप लक्ष्यमें नहीं आता; इसलिए सम्यग्दर्शनके लक्ष्यमें भेद नहीं होता है, एकरूप अभेद वस्तु ही सम्यग्दर्शनका विषय है।

(७) सम्यग्दर्शन ही शान्तिका उपाय है

अनादिसे आत्माके अखण्डरसको सम्यग्दर्शनपूर्वक नहीं जाना; इसलिये परमें और विकल्पमें जीव रसको मान रहा है, परन्तु हे जीव! मैं अखण्ड एक स्वरूप स्वभाव हूँ, उसीमें मेरा रस है। परमें कहीं भी मेरा रस नहीं है; इस प्रकार स्वभावदृष्टिके बलसे एकबार सबको नीरस बना दे। शुभ विकल्प उठते हैं, वे भी मेरी शान्तिके साधक नहीं हैं। मेरी शान्ति मेरे स्वरूपमें है; इस प्रकार स्वरूपके रसानुभवमें समस्त संसारको नीरस बना दे–ऐसा करनेसे ही तुझे सहजानंद स्वरूपके अमृतरसकी अपूर्व शान्तिका अनुभव प्रकट होगा, उसका उपाय सम्यग्दर्शन ही है।

(८) सम्यग्दर्शन से ही संसारका अभाव होता है

अनन्त कालसे अनन्त जीव संसारमें परिभ्रमण कर रहे हैं और अनन्त कालमें अनन्त जीव सम्यग्दर्शनके द्वारा पूर्ण स्वरूपकी प्रतीति करके मुक्तिको प्राप्त हुए हैं। इस जीवने संसार-पक्ष तो (व्यवहारका पक्ष) अनादिसे ग्रहण किया है, परन्तु सिद्धपरमात्माका पक्ष कभी ग्रहण नहीं किया। अब अपूर्व रुचिसे निःसन्देह बनकर सिद्धका पक्ष करके, अपने निश्चय (शाश्वत) सिद्ध स्वरूपको जानकर संसारके अभाव करनेका अवसर आया है और उसका उपाय एकमात्र सम्यग्दर्शन ही है।

परमागम श्री प्रवचनसार पर पूज्य गुरुदेवश्रीके प्रवचन

(गाथा-६० के प्रवचनमेंसे)

केवलज्ञान सर्वथा अनुमोदन करने योग्य है

आत्मा ज्ञानस्वभावी है, निमित्तका, विकारका या अपूर्ण पर्यायका आश्रय न लेते हुए स्वका आश्रय करता है और एक आत्माकी ही अपेक्षा ले तो उनको सम्यग्ज्ञान होता है, और आगे वृद्धिगत होते हुए केवलज्ञान होता है। केवलज्ञानकी प्रतीति करना अर्थात् ज्ञानस्वभावकी प्रतीति करना, वह ही धर्म है और सुख है। मिथ्यात्व अवस्थामें राग और ज्ञानका एकत्वपना होता था, ऐसे अज्ञानको छोड़कर निरपेक्ष तत्त्वका आश्रय करके ज्ञान और आत्मा एक होता है, तब सम्यग्ज्ञान होता है और बादमें सर्वथा एकाग्र होने पर केवलज्ञान प्रकट होता है।

यह केवलज्ञान संहिता है। संहिता अर्थात् व्यवस्थित पदार्थोंकी जमावट ऐसा अर्थ होता है। त्रिकाली स्वभाव व्यवस्थित है, केवलज्ञान व्यवस्थित है, ज्ञेयों भी व्यवस्थित है। त्रिकाली स्वभाव भी व्यवस्थित है, पर्यायें भी व्यवस्थित है, ऐसे व्यवस्थितकी श्रद्धा होने पर परमें बदलाव करनेकी बुद्धि टल जाती है, और स्वभावबुद्धि उत्पन्न होती है। अज्ञानीओं इस कथनको कटाक्षमें 'नियतिवाद' कहते हैं किन्तु वह उसकी भूल है। जो ज्ञान और वीर्य परमें खंडखंड हो जाता था उसे स्वभावकी ओर झुकाने पर आत्मा ज्ञाता-दृष्टा होता है। वह ही सम्यक् नियतिवाद अर्थात् कि पुरुषार्थवाद है और वह ही धर्म और सुख है ।

यह ज्ञान और सुख किसमेंसे आते है? निमित्त अगर पूर्व पर्यायमेंसे आते हैं? नहीं। जिस पदार्थमें ज्ञान और सुख नहीं उसमेंसे वे नहीं आते है। जिस पदार्थमें अस्तिरूप हो उसमेंसे ही अस्तिरूप आता है।

(१) देव, गुरु, शास्त्र, शरीरादि तो प्रत्यक्ष पृथक् है उनमेंसे ज्ञानकी अस्ति आ सकती नहीं।

(२) विकार होता है वह राग है इसलिये रागमेंसे ज्ञान अथवा वीतरागताकी अस्ति आ सकती नहीं है।

श्री शीतलनाथ जिन-स्तुति	तव अनघ वाक्य किरणें, विशद ज्ञानपति, शांत-जल-पूरिता, शमकरा सुष्ठुमति;

(३) ज्ञानकी पूर्व पर्याय वह अपूर्ण है और वर्तमान व्ययरूप है अर्थात् कि नास्तिरूप है, इसलिये नास्तिमेंसे अस्ति नहीं आ सकती।

इसलिये जो अस्ति हो उसमेंसे अस्ति प्रकट होती है। चैतन्य ध्रुव पदार्थ जो त्रिकाल अस्तिरूप है उसमेंसे केवलज्ञानकी अस्ति अर्थात् प्रकट दशा होती है। अज्ञानी जीवोंको ऐसे त्रिकाली स्वभावकी महत्ता आती नहीं और बाह्य क्रियाकी पुण्यकी–क्रियाकी महत्ता अलग नहीं होती।

केवलज्ञान देदीप्यमान ज्योति स्वरूप है, उसमें तीन कालके, तीन लोकके पदार्थों जैसे हैं वैसे व्यवस्थित जाननेमें आ जाते है। उसमें किसको कितने भव आदि सब कुछ जाननेमें आ जाता है, कोई भी चीज केवलज्ञानके ज्ञानके बाह्य नहीं है। ज्ञानमें ज्ञेयोंको जाननेका स्वभाव है। उसमें ''यह कैसे हुआ'' और ''यह क्यों नहीं हुआ'' ऐसे प्रश्न ही रहते नहीं है।

(१) ज्ञानकी अवस्था बदलना वह दुःखका कारण नहीं लेकिन परका आश्रय करके ठीक-अठीक बुद्धि करना ही दुःखका कारण है। अज्ञानदशामें निमित्तकी रुचि एक ज्ञेयसे दूसरे ज्ञेयकी ओर जाते ज्ञान थक जाता है।

स्वभाव वह अपना खेदका कारण नहीं है। स्वभाव खेदका कारण हो तो आनंद कदापि प्रकट नहीं होता। निमित्ताधीन दृष्टि खेदका कारण है इसलिये घातिकर्म खेदका स्थान है ऐसा उपचारसे कहा गया है।

केवलज्ञानमें निमित्ताधीन दृष्टिका सर्वथा अभाव है और परकी ओरका लक्ष सर्वथा नाश हुआ है इसलिये भगवानको खेद नहीं है। घातिकर्मोंका स्वयं अभाव होता है इसलिये घातिकर्मोंके अभावसे केवलज्ञानमें खेद नहीं ऐसा कहना वह उपचारसे कथन है।

(२) जितने पदार्थों भूत, वर्तमान, भविष्यके होते हैं वे सभी युगपद् चित्रित दिवारकी भांति केवलज्ञानमें दृश्यमान है। केवलज्ञानीके अन्य परिणाम नहीं अर्थात् विकार अथवा अपूर्णदशाका परिणाम नहीं । ज्ञानका एक ही परिणाम है। ज्ञान रागमें ठहरता नहीं इसलिये उसे थकान लगती नहीं है इसलिये खेद होता नहीं है।

(३) अज्ञानदशामें अज्ञानके कारण ज्ञानका ज्ञेयमें ठहरना होता है उसे अज्ञान सर्वथा नाश हो गया है, और साधकदशामें अपनी कमजोरीके कारण ज्ञान बाधित होता था वह अल्प विघ्नका भी अभाव हो गया है इसलिये केवलज्ञानमें स्वभाव प्रतिघातका अभाव है और अनंत

है तथा शम न चन्दन, किरण चन्द्रमा,
नाहिं गंगा जलं, हार मोती शमा।४६।

शक्तियाँ किसी भी प्रकारके अंकुश बिना अमर्यादित खिल रही हैं। जैसे फव्वारेमेंसे पानी बाहर फैल रहा है वैसे चैतन्य फव्वारेमेंसे अनंत शक्तिरूप धारा उल्लसित हो रही है।

केवलज्ञानको सर्वकालमें एकरूप रहनेवाला अर्थात् अचल, अत्यंत निष्कंप कहा है। यहा केवलज्ञानको कूटस्थ कहा है, उसका अर्थ ऐसा नहीं कि वह सर्वथा अपरिणाम है, लेकिन वह एक ज्ञेयसे अन्य ज्ञेय प्रति पलटता नहीं है। सर्वकाल समस्त ज्ञेयाकारोंको जानता ही रहता है। एकरूप रहनेवाला है इसलिये उसे कूटस्थ कहा है।

इस प्रकार केवलज्ञानमें आकुलता नहीं है । अनाकुलता वह सुखका लक्षण है इसलिये केवल वह ही सुख है। केवलज्ञान और सुखको पृथक्पन नहीं है, इसलिये वह ही सर्वथा अनुमोदन करने योग्य है। बाह्य पदार्थों, पैसा, देव-गुरु-शास्त्र, शुभराग और अपूर्णदशा अनुमोदन करनेयोग्य नहीं है।

जिसने स्वयंके त्रिकाली शुद्ध स्वभावकी यथार्थ प्रतीति और ज्ञान किया अर्थात् कि स्वभावका अनुमोदन किया उसने केवलज्ञानका अनुमोदन किया कहा जाता है। आत्माका ज्ञानस्वभाव है। गुड़का मीठापन, निम्बूका खट्टापन, अफीमका कड़वापना स्वभाव है ऐसा आत्माका जाननेका स्वभाव जानो।

आत्मा शरीर, मन, वाणीका कर्ता नहीं, परलक्षसे होनेवाली भ्रांति वह उसका कार्य नहीं, मिथ्यात्व, अव्रत, प्रमाद, कषाय, योग भी आत्माका कार्य नहीं है। उसका कार्य मात्र जाननेका है। यथार्थ ज्ञान होने पर साधकदशामें ज्ञान स्व, पर, राग, निमित्त वह सबको जानता है और परिपूर्ण केवलदशा प्रकट होने पर स्व-परको पूर्णरूपसे जानता है।

यहाँ शिष्य प्रश्न पूछता है कि "केवलज्ञानमें भी परिणाम होते रहनेसे थकान लगे और उसे दुःख होता है, इसलिये केवलज्ञान एकांतिक सुख किस प्रकारसे हो सकता है।" इस आशंकाका श्रीगुरु समाधान करते हैं।

परिणमित होते रहना वह थकान और दुःखका कारण नहीं है, यदि वह दुःखका कारण है तो जडमें भी परिणमन होता रहता है। लकड़ीमेंसे राख, युवा शरीरमेंसे वृद्ध शरीर होता है तो जड़को भी दुःख होना चाहिये। लेकिन जड़में सुख-दुःख नहीं है इसलिये परिणमन वह दुःखका कारण नहीं है लेकिन परवस्तु मेरी और उसमेंसे मुझे सुख हो, तथा परवस्तुको मैं पलटा सकता हूँ ऐसा अज्ञानभाव वह दुःखका कारण है ।

अक्ष–सुख चाहकी आगसे तृप्त मन,
ज्ञान-अमृत-सुजल सींच कीना शमन;

अज्ञानीको दुःखकी खबर भी नहीं है। हर्षोल्लासमें सनेपातवाला जीव रोगसे पीड़ित हो गया है, दूसरे जानते है कि यह अल्प समयका महेमान है तदपि भी वह हसता रहता है। इसलिये क्या वह सुखी है? उसे दुःखकी खबर नहीं है। इस प्रकार अज्ञानी परपदार्थमें इष्टपना मानकर स्वयंको सुख मान रहा है तो वह सुखी नहीं है। ज्ञानी तो उसको अज्ञानताके दुःखमें जल रहा देख रहा है।

कोई ज्योतिषी अज्ञानी जीवको कहता है कि "एक सालमें पांच लाख रुपयेकी प्राप्ति होगी और घरमें पुत्रका जन्म होगा" तो ऐसा सुनकर उसे रागमें और मान्यतामें कैसी हलचल होती है? स्वयंने मानी हुई अनुकूलताके लिये वह कैसा तड़प रहा है। ज्योतिषी जो भी कहे वह मान रहा है और सब कुछ करता है। परवस्तु जो ज्ञेय है उसका माहात्म्य आता है लेकिन उन सभीको जाननेवाले स्वयंके ज्ञानस्वभावका माहात्म्य आता नहीं है। केवली भगवान बड़े ज्योतिषी हैं कहते है कि "परकी रुचि वह दुःख है और स्वकी रुचि वह सुख है, ऐसी मान्यता कर तो सम्यग्ज्ञान प्रकट करके सुखी होगा। जैसा जैसे ज्ञेय आयेंगे वैसे वैसे प्रकारका ज्ञान करनेका मुझमें सामर्थ्य है। ज्ञेयोंको परिणमित करनेका सामर्थ्य तुझमें नहीं है।" किन्तु अज्ञानीको स्वयंके ऐसे ज्ञानस्वभावका भरोसा आता नहीं है।

केवलज्ञानमें अज्ञानके परिणामका नाश हो गया है। इसलिये उसमें थकान या दुःख नहीं है। केवलज्ञान स्वआश्रित होनेसे उसे खेद हो सकता नहीं है और घातिकर्मोंका भी निमित्तरूपमें अभाव है इसलिये उसमें सुख है।

केवलज्ञान स्वयं परिणामशील है, पलटनेका नाश हो तो पर्यायका नाश और केवलज्ञानका नाश हो लेकिन ऐसा कदापि नहीं होता। परिणाम केवलज्ञानका सहज स्वरूप है, और केवलज्ञान स्वयं आत्माश्रित है जिससे परिणाम द्वारा खेद नहीं है।

केवलज्ञान तीनोंकालके पदार्थोंको सर्वदा अड़ोलरूपसे जानता है। केवलज्ञान अत्यंत स्थिर और आकुलता रहित है। क्योंकि उसमें पदार्थों एकसाथमें जाननेमें आ जाते हैं। रागदशामें ज्ञान अस्थिर है लेकिन केवलज्ञानमें रागका अभाव होनेसे वह स्थिर है।

इस प्रकार केवलज्ञान सुखस्वरूप है, इसलिये उसकी श्रद्धा और ज्ञान करके उसकी प्राप्ति हेतु ज्ञानस्वभावकी महिमा लाना और उसका ही आश्रय करना चाहिये। (क्रमशः)*

वैद्य जिम मंत्र गुणसे करे शांत तन,
सर्व विषकी जलनसे हुआ बेयतन। ४७।

अध्यात्म संदेश

(रहस्यपूर्ण चिट्ठी पर परम पूज्य गुरुदेवश्रीका प्रवचन)

निर्विकल्प-अनुभवके समयकी स्थितिका वर्णन

''...तथा जो ज्ञान पाँच इन्द्रियाँ व छठवें मनके द्वारा प्रवर्तता था, वह ज्ञान सब ओरसे सिमटकर इस निर्विकल्प अनुभवमें केवल स्वरूपसन्मुख हुआ; क्योंकि यह ज्ञान क्षयोपशमरूप है इसलिये वह एक कालमें एक ही ज्ञेयको जानता है। जब वह ज्ञान स्वरूप जाननेको प्रवर्ता तब अन्यको जाननेका सहज ही बंध हुआ। वहाँ ऐसी दशा हुई कि बाह्य अनेक शब्दादि विकार हों तो भी स्वरूपध्यानीको उसकी कुछ खबर नहीं। इसप्रकार मतिज्ञान भी स्वरूपसन्मुख हुआ। तथा नयादिकके विचार मिटने पर श्रुतज्ञान भी स्वरूपसन्मुख हुआ। ऐसा वर्णन समयसारकी टीका आत्मख्यातिमें किया है तथा आत्म-अवलोकनादिमें है।''

साधकको निर्विकल्पअनुभवमें मति-श्रुतज्ञान कार्य करते हैं। मति-श्रुतज्ञान क्षयोपशमभावरूप है इसलिये एक वक्तमें एक ज्ञेयको ही जाननेमें वह प्रवर्तता है; या स्वको जाननेमें उपयोग हो, या तो परको जाननेमें उपयोग हो। केवलज्ञानमें तो स्व-पर सभीको एक साथ जाननेका पूरा सामर्थ्य प्रकट हो गया है परन्तु इस साधकके ज्ञानमें अभी ऐसा सामर्थ्य खिला नहीं; इसलिये इसका जब स्वको जाननेमें उपयोग हो तब परको जाननेमें उपयोग नहीं होता, और जब परको जाननेमें उपयोग हो तब स्वको जाननेमें उपयोग नहीं होता। स्वको जाननेमें उपयोग न हो इससे वहाँ अज्ञान नहीं हो जाता; क्योंकि स्वसंवेदनके समयमें जो ज्ञान हुआ है वह लब्धरूपसे तो वर्त ही रहा है।

क्षायोपशमिक ज्ञानकी शक्ति ही इतनी मंद है कि एक समयमें एक तरफकी इसकी प्रवृत्ति होती है; अतएव वह या तो स्वको जाननेमें प्रवर्ते, या परको जाननेमें प्रवर्ते। अपनेमें तो ज्ञानके साथ आनंद, प्रतीति, आदि सभी गुणोंका जो निर्मल परिणमन अभेद वर्तता है उसको (अर्थात् अखंड आत्माको) तन्मय होकर जानता है। स्वको जानते समय आनन्दधारामें उपयोग तन्मय हुआ है इसलिये उस निर्विकल्पदशामें विशिष्ट आनंदका वेदन होता है।

भोगकी चाह अर चाह जीवन करे,
लोक दिन श्रम करे रात्रिको सो रहे;

यह बात केवलज्ञानके समयकी नहीं अपितु गृहस्थोंमें रहे हुए चौथे-पाँचवें गुणस्थानवाले जीवकी बात है। सातवें गुणस्थानसे तो निर्विकल्प स्व-उपयोग ही रहता है। छठवें-सातवें गुणस्थानवर्ती मुनिको अन्तर्मुहूर्तमें नियमसे निर्विकल्प उपयोग होता है। चौथे-पाँचवें गुणस्थानसे स्व-उपयोग कभी-कभी होता है। पर तरफके उपयोगके समयमें भी वहाँ स्वका ज्ञान लब्धरूपसे रहता है, अतएव पहले स्वसंवेदनसे आत्मस्वरूपकी जो प्रतीति व ज्ञान हुआ है उसमें कोई फर्क नहीं पड़ता।

'एक ही ज्ञेय' अर्थात् स्वज्ञेय अथवा परज्ञेय-इन दोनोंमें एक ऐसा अर्थ समझना। वैसे तो मतिज्ञानके विषयमें बहु-बहुविध आदि अनेक प्रकार लिये हैं। एक साथ अनेक मनुष्योंकी एवं पशु-पक्षीकी आवाज सुनें और उनमें हरेककी आवाजको भिन्न-भिन्न सुनें–ऐसी ताकत गणधरदेवकी होती है, फिर भी उन्हें भी स्वमें एवं परमें ऐसे एक साथ दोनोंमें उपयोग नहीं होता। परंतु स्व-परकी भिन्नताका जो भान हुआ है वह तो परज्ञेयमें उपयोगके समयमें भी धर्मीको नहीं हटता। उपयोग यदि दो घडी तक स्वज्ञेयमें स्थिर रहे तब तो केवलज्ञान हो जाय, छद्मस्थका उपयोग इतने लम्बे कालतक स्वज्ञेयमें ठहरता नहीं। यहाँ कहते हैं कि उपयोग भले ही स्वमें निरंतर न रहे परन्तु लब्धज्ञान तो प्रतिक्षण वर्त ही रहा है, इसलिये परज्ञेयको जानते हुए भी उसमें कहीं धर्मीको एकताबुद्धि नहीं होती, धर्मी सबसे न्यारा ही न्यारा रहता है। बाहरसे देखनेवालेको तो ज्ञानी भी दूसरोंके जैसा ही दीखे कि–हम भी शुभ-अशुभ करते हैं और हमारी तरह ये ज्ञानी भी शुभाशुभ कर रहे हैं—परन्तु भैया ! इसकी परिणति अन्तरमें रागसे भिन्न ही कुछ कार्य कर रही है; इसकी प्रतीतिमें, इसके ज्ञानमें स्वज्ञेयको वह कभी नहीं भूलता,–भले ही उपयोग कदाचित् लड़ाईमें या विषयकषायोंमें भी हो। जो कि इसको विशेषरूपसे तो शुभराग–देव-गुरु-शास्त्रकी पूजा-भक्ति, स्वरूपचिंतन आदि ही होते हैं; तथापि अशुभका भी इस भूमिकामें सर्वथा अभाव नहीं होता। पाँचवें गुणस्थानमें भी अशुभभाव कोई बार आ जाता है। परन्तु यहाँ तो, उसी वक्त उसके-अन्तरमें श्रद्धाकी व ज्ञानकी निर्मल गंगाका प्रवाह बह रहा है यह दिखाना है। ज्ञानगंगाका यह सम्यक् प्रवाह सभी विकारको धो डालेगा और केवलज्ञान-समुद्रमें जा मिलेगा।

ऐसे धर्मीको जिस वक्त स्वज्ञेयमें उपयोग हो उस वक्तकी यह बात है। अहा, निर्विकल्प अनुभवमें चैतन्य गोला जगतसे ऐसा भिन्न अनुभूत होता है कि बाहरमें क्या हो रहा

हे प्रभु आप तो रात्रि दिन जागिया,
मोक्षके मार्गको हर्षयुत साधिया ।४८।

है उसका लक्ष नहीं; देहका क्या हो रहा है, अरे ! देह है भी या नहीं, इसका भी लक्ष नहीं; आत्मा अतीन्द्रिय आनंदमें ही मग्न है। ऐसी स्थिति चौथे गुणस्थानके गृहस्थ श्रावकके भी होती है। ऐसे आत्मस्वरूपको साधनेके लिये जो निकला उसे जगतका कोई संयोग डिगा नहीं सकता,—प्रतिकूल या अनुकूल कोई भी संयोग उसे चलित नहीं कर सकता। जहाँ जगतसे जुदा ही चैतन्यबिम्ब स्वानुभवमें लिया वहाँ परका असर कैसा ? और परभाव भी कैसा ? परभाव परभावमें है, मेरे चैतन्यभावमें परभाव नहीं है। अहो ! ऐसा वेदन सम्यग्दृष्टि धर्मात्माके होता है।

अनादिसे मति-श्रुतज्ञान अकेले परज्ञेयोंकी ओर झुके हुये हैं, ज्ञानस्वभावके सम्यक्निर्णयके बलसे उस मति-श्रुतज्ञानको स्वसन्मुख करके ऐसा अनुभव होता है; इस अनुभवमें भगवान आत्मा प्रसिद्ध होता है। समयसार गाथा १४४में इसका अलौकिक वर्णन किया है; वहाँ कहा है कि–प्रथम श्रुतज्ञानके अवलम्बनसे ज्ञानस्वभाव आत्माका निश्चय करके.... (यहाँ तक तो सविकल्पदशा है) ...बादमें आत्माकी प्रकट प्रसिद्धि करनेके लिये अर्थात् अनुभवके लिये, परपदार्थकी प्रसिद्धिके कारण–जो इन्द्रियद्वारा व मनद्वारा प्रवर्तती हुई बुद्धियाँ–इनको मर्यादामें लाकर मतिज्ञानतत्त्वको आत्मसन्मुख किया, तथा अनेक प्रकारके नयपक्षके विकल्पोंद्वारा आकुलताकी उत्पादक ऐसी श्रुतज्ञानकी बुद्धियोंको भी मर्यादामें लाकर श्रुतज्ञानतत्त्वको भी आत्मसम्मुख किया, इस रीतिसे मति-श्रुतज्ञानको परकी ओरसे समेटकर आत्मस्वभावमें लानेसे तत्क्षण ही अत्यन्त विकल्परहित होकर यह आत्मा अपने शुद्धस्वरूपको अनुभवता है; इसमें आत्मा सम्यक्रूपसे दिखता है व जाननेमें आता है, अतः यही सम्यग्दर्शन व सम्यग्ज्ञान है, इस अनुभवको 'पक्षातिक्रांत' कहा है, क्योंकि इसमें नयपक्षके कोई विकल्प नहीं। ऐसा अनुभव करे तब जीवको सम्यग्दर्शन होता है।

ऐसा अनुभव कैसे हो ? यह पहले ही दिखाया कि 'प्रथम श्रुतज्ञानके अवलम्बनसे ज्ञानस्वभाव आत्माका निश्चय करके...'–ऐसे यथार्थ निश्चयके बलसे विकल्प टूटके साक्षात् अनुभव होता है। अन्तरमें आत्मस्वरूपका सच्चा निर्णय यही मुख्य वस्तु है; इसकी तो महत्ता जगतको नहीं दिखती और बाह्य क्रियाकी महत्ता दीखती है, परन्तु वह तो उपाय नहीं है। अन्तरमें आत्माके स्वभावका अच्छी तरह निर्णय करके इसके अन्तर्मंथनसे स्वानुभव होता है, यही सम्यग्दर्शनका उपाय है। तत्त्वके अन्वेषणकालमें, अर्थात् निर्णयका उद्यम करते

(शेष देखे पृष्ठ २४ पर)

पुत्र धन और परलोककी चाह कर,
मूढजन तप करें आपको दाह कर;

मुक्तिका मार्ग

(सत्तास्वरूप पर पूज्य गुरुदेवश्रीका प्रवचन) (प्रवचन : ५)

सर्वज्ञदेवकी पहचान करनी चाहिए

यहाँ कोई अज्ञानी तर्क करता है कि :–हम तो सच्चे जिनेन्द्र अरहन्तदेवकी सेवा पूजा करते हैं, हमारे देवको केवलज्ञान है, हम उनकी भक्ति करते हैं, हम सच्चे देवको ही मानते हैं, और अन्य धर्मावलम्बी तो मिथ्यादेवको मानते हैं, उनकी पूजादि करते हैं। इस प्रकार उनमें और हममें इतना फरक तो है ही। उसके उत्तरमें कहते हैं कि जैसे दूसरे लोग अपने देवको समझे बिना मानते है, तू अपने देवके सच्चे होने पर भी उन्हें पहचानता नहीं है इसलिए दोनों एकसे ही हुए। उदाहरणके रूपमें जैसे दो अज्ञानी बालकोंमेंसे एकको कांच मिला और दूसरेको हीरा मिला (कांच कुदेवके स्थान पर है और हीरा सच्चेदेवके स्थान पर है), दोनोंने श्रद्धापूर्वक अपने अपने वस्त्रकी गांठमें उन्हें बांध लिया, किन्तु उन दोनोंमेंसे किसीको भी काँच और हीराकी पहिचान नहीं है। यद्यपि जिसकी गाँठमें हीरा है वह हीरा ही है और जिसकी गाँठमें काँच है वह काँच ही है, किन्तु दोनोंमेंसे किसीको यथार्थ ज्ञान ही नहीं है, इसलिए दोनों समान ही हैं, दोनोंमें कोई अन्तर नहीं है। उसीप्रकार तू सच्चे हीरे जैसे जिनेन्द्रदेवको मानता है किन्तु तुझे उनके स्वरूपकी खबर नहीं है तो तुझमें और दूसरेमें कोई फरक नही है। दूसरे अज्ञानीयोंको कुदेव मिले है और तुझे सच्चेदेव मिले है किन्तु सच्चेदेवकी तुझे परीक्षा नहीं है इसलिए तू और दूसरे सब समान ही हैं।

प्रश्न :—कोई कहता है कि हमें एकदम इस प्रकार क्यों उड़ा रहे हो, हम अनेक वर्षोंसे बराबर परिश्रम करते चले आ रहे हैं, हमारी कुछ भी तो रखो ?

उसके समाधानमें कहते हैं कि भाई ! तूने क्या किया है ? तूने कुलरूढ़िसे प्राप्त सच्चे देवको माना किन्तु सच्चे देवके स्वरूपको नहीं जानता; जब तक सच्चे देवके यथार्थ स्वरूपको नहीं जान लोगे तब तक तुममें और अन्य लोगोंमें वास्तवमें कोई अन्तर नहीं होगा।

अज्ञानी कहता है :—दूसरे धर्मावलम्बी कुदेवको मानते हैं इसलिए उनके गृहीतमिथ्यात्व है और हम सच्चे देवको मानते हैं, उनके दर्शन, पूजन, भक्ति इत्यादि किये बिना कुछ नहीं खाते पीते, इसलिए आप इतना तो कह दीजिये कि हमारा गृहीतमिथ्यात्व छूट गया है। कुदेवोंके प्रति जो आकर्षण था वह छूट गया इसलिए हमारा गृहीतमिथ्यात्व तो छूट गया

आपने तो जरा जन्मके नाश हित,
सर्व किरिया तजी शांतिमय भावहित । ४९ ।

और हमें उतना तो लाभ हुआ ?

उसका उत्तर :—भाई ! तुम्हें अभी गृहीतमिथ्यात्वके स्वरूपकी ही खबर नहीं है। सर्वज्ञवीतरागदेव, निर्ग्रंथ गुरु, तथा वीतराग द्वारा कहे गये शास्त्र एवं धर्मका स्वरूप जब बाह्य लक्षणों द्वारा निश्चित किया जाय और उनकी यथार्थता प्रतिभासित हो जाय तथा उनके संबंधमें विपरीतता छूट जाय तभी गृहीत मिथ्यात्व छूटता है। किन्तु बाह्य लक्षणोंके द्वारा देव, गुरु, धर्मको पहिचाने बिना यदि कोई सच्चे देवको भी माने और दूसरेको न माने तो भी इतनेसे उसके गृहीतमिथ्यात्व नहीं छूट जाता; यहाँ तो अभी गृहीतमिथ्यात्वके छोड़नेकी बात है, अगृहीतमिथ्यात्वके छोड़नेकी बात तो गृहीत-मिथ्यात्वके छोड़नेके बाद आती है।

आत्मा परिपूर्ण, निर्मल ज्ञानस्वरूप है, रागका एक अंश भी मेरे स्वरूपमें सहायक नहीं है, पुण्य करते-करते धर्म नहीं होता, मैं शरीरादिकका कुछ भी नहीं कर सकता, इस प्रकार यदि स्वतंत्र आत्मतत्त्वकी प्रतीति हो जाय तो वह अनन्त संसारके परिभ्रमणको नष्ट कर देनेवाली होती है, अर्थात् वह मुक्तिका कारण होती है। किन्तु वह प्रतीति कब होती है ? जब कि पहले सच्चे देव-गुरु-धर्मको पहचानकर, जन्मके बाद देव-गुरु-शास्त्र सम्बन्धी ग्रहण की गई विपरीत मान्यताको छोड़ दे, इसके बाद ही अनादिकालसे चली आई विपरीत मान्यता छूट सकती है। गृहीतमिथ्यात्वके छूटे बिना किसीका भी अगृहीतमिथ्यात्व नहीं छूट सकता।

अरे रे ! यह मनुष्य जीवन और उसमें भी सर्वज्ञका जैन धर्म तथा सर्वज्ञका यह मार्ग मिला, फिर भी अभी तक तू सच्चे देवके स्वरूपको भी न पहचाने तो तेरा उद्धार कैसे होगा ? उद्धारका इससे अधिक अच्छा अवसर तुझे कहाँ मिलेगा ? पुनः पुनः ऐसा अवसर मिलना दुर्लभ है। इसलिए तूं तत्त्वनिर्णयका व सम्यग्दर्शनका प्रयत्न कर। (क्रमशः) ✻

(पृष्ठ २२ का शेष भाग) (अध्यात्म संदेश)

समय नयप्रमाण आदिके विचार होते हैं परन्तु आराधनाके समयमें तो साक्षात् अनुभव है, वहाँ नय-प्रमाणके विकल्प नहीं होते, इससे इस अनुभवको नयातीत कहा है, इसमें तो निर्विकल्पताके आनंदका ही वेदन रहता है; भगवान आत्मा अनुभूतिमें प्रसिद्ध हो गया तब वहाँ इसके अन्वेषणके विकल्प नहीं रहते। देख लो, यह ज्ञानीका अनुभव ! ऐसा जो अनुभव वही धर्म है। अब यह कहेंगे कि, ऐसे निर्विकल्प अनुभवके समयमें आत्माका उपयोग इन्द्रिय या मनकी ओर नहीं है परन्तु अपनेमें ही उपयोग लगा है, इससे उसे अतीन्द्रिय कहते है। (क्रमशः) ✻

आप ही श्रेष्ठ ज्ञानी महा हो सुखी,
आपसे जो परे बुद्धि लव मद दुःखी;

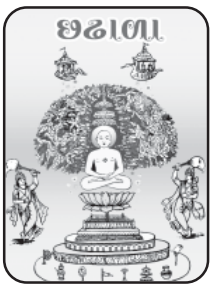

श्री छहढाला पर पूज्य गुरुदेवश्रीका प्रवचन

(तीसरी ढाल, गाथा-१)

आत्माके हितरूप मोक्षमार्गका वर्णन

हे जीव ! तू मोक्षपथमें चल

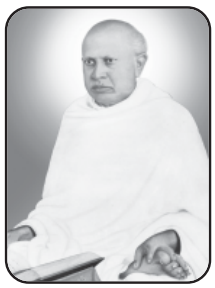

जिसकी दृष्टि ही बंध है, ज्ञानचक्षु ही जिसके खुले नहीं है उसे नय कैसा ? जो मात्र व्यवहारको देखता है उसे तो रागमें एकत्वबुद्धि हो गई है, राग ही उसे सर्वस्व हो गया है; यदि रागको ही सर्वस्व न मानता हो तो, रागसे पृथक् अन्य कोई स्वरूप है उसका उसे लक्ष होना चाहिये, अर्थात् कि निश्चयका लक्ष होना चाहिये, और निश्चयका लक्ष हो तो व्यवहारके आश्रयसे कल्याण मानता नहीं है। निश्चयके लक्ष बिना मोक्षमार्ग कैसा ? एकांत व्यवहारका आश्रय वह तो संसार है–मिथ्यात्व है। बहिर्मुखदृष्टिमें अज्ञानीको जो शुभविकल्प है वह व्यवहार नहीं, वह तो व्यवहाराभास है। यहाँ तो मोक्षमार्गको साधनेवाले साधकको निश्चयके साथ जो व्यवहार है उसकी बात है। केवलज्ञानके पूर्व साधकदशामें जो व्यवहार है उसे न समझे वह निश्चयाभासी है। मुनिको आत्माके रत्नत्रयकी शुद्धता कैसी होती है और उसके साथमें उस भूमिकामें पंचमहाव्रतादि कैसे होते है उन दोनों प्रकारको पहिचानना चाहिये; उसमें विपरीतता माने तो उसे मुनिकी यथार्थ पहिचान होती नहीं है। इसीप्रकार सम्यग्दर्शनकी भूमिकामें भी निश्चय और व्यवहार दोनों कैसे होते हैं उन्हें यथार्थ पहिचानना चाहिये। जिस भूमिकामें निश्चय-व्यवहारके जैसे जैसे प्रकार हो उसे यथार्थ पहिचानना चाहिये। भाई, यह तो सभी तेरे आत्माके पहलू है; उसे समझ। समझना ही आत्मा है। समझना अर्थात् ज्ञान; केवलज्ञान समझका पिंड है। उसमें कहीं भी राग नहीं है। ज्ञानकी जातिकी अपेक्षासे केवलज्ञान और श्रुतज्ञान दोनों एक समान है। जैसे रुईकी गठरी हो, उसमें सभी जगह रुई ही होती है। वैसे आत्मा ज्ञानकी विशाल गठरी है, उसमें ज्ञान ही भरा है। अरे, ज्ञानका पिंड स्वयं और ऐसा कहे कि मुझे मेरे स्वरूपकी पहिचान नहीं होती है— यह तो कैसी बात ? ....मीठे पानीके समुद्रमें रहा हुआ मत्स्य कहता है कि मैं प्यासा हूँ– उसके जैसी यह बात है। भाई ! रागकी पकड छोड़कर तेरी दृष्टिमें शुद्ध आत्माको पकड़

याहिते मोक्षकी भावना जे करें,
संतजन नाथ शीतल तुम्हें उर धरे ।५०।

तो तुझे आत्मशुद्धिरूप सम्यग्दर्शन होगा, उसके साथमें ही सम्यग्ज्ञान होगा; सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान होने पर स्वरूपमें निश्चल रहनेरूप चारित्र होता है; इस प्रकार मोक्षमार्ग होता है; वह ही सुख है, वह ही जीवका हित है, वह ही धर्म है।

आत्मा स्वयं ही सुखस्वरूप है इसलिये आत्मामें उपयोग लगानेसे सुखका अनुभव होता है। आत्माका सुख कहीं बाह्यमें नहीं है अर्थात् बाह्यके आश्रयसे सुख होता नहीं है। जहाँ सुख हो उसमें उपयोग लगानेसे सुख प्रकट होता है; अर्थात् कि निश्चयके आश्रयसे सुख होता है और परके व्यवहारके-रागके आश्रयसे सुख होता नहीं है। इसलिये निश्चयका आश्रय करो और व्यवहारका आश्रय छोड़ दो।

श्रीमद् राजचंद्रजीने १७ वर्षकी पूर्व उम्रमें यह बात नीचेके शब्दोंमें अच्छी तरहसे लिखी है —

स्वद्रव्य अन्यद्रव्य भिन्न-भिन्न देखो, स्वद्रव्यके रक्षक शीघ्रतासे हो।

स्वद्रव्यके व्यापक शीघ्रतासे हो जाओ, स्वद्रव्यके धारक शीघ्रतासे हो जाओ।

स्वद्रव्यके रमक शीघ्रतासे हो जाओ, स्वद्रव्यके ग्राहक शीघ्रतासे हो जाओ।

स्वद्रव्यकी रक्षकता पर लक्ष रखो, परद्रव्यकी धारकता शीघ्रतासे तज दो।

परद्रव्यकी रमणता शीघ्रतासे तजो, परद्रव्यकी ग्राहकता शीघ्रतासे तज दो।

—इसमें प्रथम सात बोलमें स्वद्रव्यका आश्रय करनेका बतलाया है, और बादके तीन बोलमें परद्रव्यका आश्रय छोड़नेको कहा है।—इसप्रकार दस बोल द्वारा तो जैन सिद्धांतका रहस्य समझा दिया है। अल्प शब्दोंमें और सादी भाषामें बहुत सुंदर बात की है।

चैतन्यवस्तु रागादि आस्रव बिनाकी है और अजीव कर्मसे पृथक् है—ऐसी स्वयंकी चैतन्यवस्तुको अनुभवमें लेकर सम्यग्दर्शन प्रकट करे तब निश्चयके साथ रागमें आरोप देकर उसे व्यवहार कहा जा सके। लेकिन रागसे भिन्न स्वतत्त्वको जो न जाने और रागमें एकता माने उसे व्यवहार कहाँ रहा? उसे तो राग ही निश्चय हो गया अर्थात् मिथ्यात्व हो गया। इसलिये पुरुषार्थसिद्धिउपायमें कहा है कि–अज्ञानीको समझानेके लिये मुनीश्वरों अभूतार्थ ऐसे

श्री श्रेयांसनाथ जिन-स्तुति	जिनवर हितकारी वाक्य निर्बाधधारी, जगत जिन सुहितकर मोक्षमारग प्रचारी;

व्यवहारका उपदेश करते है;—लेकिन वहाँ जो जीव मात्र व्यवहारको ही परमार्थरूप जान ले तो वह जीव यथार्थ उपदेशको समझ सकता नहीं है। अर्थात् उसे देशना फलीभूत होती नहीं है। भाई, तुझे परमार्थस्वरूप दर्शाने हेतु व्यवहार कहा था, कोई व्यवहारमें ठहरनेके लिये नहीं।

सर्वज्ञदेव द्वारा कहा हुआ स्वतत्त्वको पहिचानना, श्रद्धामें और अनुभवमें लेना वह निश्चयमार्ग है। उसके साथ नव तत्त्वका ज्ञान, सच्चे देव-गुरुकी पहिचान आदि होता है वह व्यवहार मोक्षमार्ग है। स्वयंके सर्वज्ञस्वभावकी श्रद्धा वह निश्चय सम्यग्दर्शन, और अन्य सर्वज्ञ परमात्माकी श्रद्धा वह व्यवहार सम्यग्दर्शन है। धर्मीको ऐसे निश्चय-व्यवहारकी संधि होती है। निजस्वरूपमें वीतरागी लीनता वह निश्चयचारित्र है, वह स्वद्रव्याश्रित है, और पंचमहाव्रतादि शुभराग वह व्यवहारचारित्र है; वह परद्रव्याश्रित है। स्वद्रव्याश्रित शुद्धता वह मोक्षका कारण है, परद्रव्याश्रित रागादिभाव वह बंधका कारण है।

जैसे अरिहंत भगवान है वैसा ही मैं हूँ—ऐसा निश्चित करनेवालेको अरिहंत भगवानकी ओरका जो विकल्प था उससे हठकर स्वयंके ज्ञानस्वभावकी अनुभूति की तब वास्तवमें सम्यग्दर्शन हुआ; और उसमें निमित्तरूप अरिहंतकी श्रद्धाके भावको भी सम्यग्दर्शन कहा—वह व्यवहार है, अर्थात् वास्तवमें वह सम्यग्दर्शन नहीं है लेकिन सम्यग्दर्शनका उसमें आरोप देकर उसे भी सम्यग्दर्शन कहा है। जो स्वसन्मुख होकर सम्यग्दर्शन प्रकट नहीं करता उसे तो निश्चय या व्यवहार कुछ होता नहीं है। सम्यक्त्व सन्मुख हुआ जीव अरिहंतदेवकी ओर लक्षके समय विकल्पमें रुकना माँगता नहीं है लेकिन अंतरमें निजस्वरूपका निर्णय करके अंतर्मुख होना चाहता है—ऐसा लक्षके कारण अरिहंतकी श्रद्धाको भी सम्यग्दर्शन कह दिया है। लेकिन अंतर्स्वभावकी ओर जो झुकता नहीं उसे व्यवहार भी लागु होता नहीं है।

यह छढाला तो जैनधर्मका तत्त्वज्ञान करानेके लिये पाठ्यपुस्तक है, बड़े और सभी बालकोंको भी पढ़ाने जैसा है; सरल है और सरलतासे समझमें आ जाय ऐसा है, और प्रयोजनभूत ऐसे वीतरागविज्ञानका स्वरूप इसमें समझाया है। अहा, वीतरागविज्ञानकी ऐसी शिक्षा तो घरघरमें होनी चाहिये; शेष लौकिक शिक्षामें तो हित नहीं है। यह तो सर्वज्ञ भगवानने समझाई हुई वीतरागी शिक्षा है जो अपूर्व हितकारी है। (क्रमशः) ✻

जिम मेघ रहित हो सूर्य अेकी प्रकाशे,
तिम तुम या जगमें एक अद्भुत प्रकाशे।५१।

'सर्व गुणांश वह सम्यक्त्व' अर्थात् क्या ?

सम्यग्दर्शन होने पर आत्माके सभी गुण निर्मलरूप परिणमित होने लगते हैं; सम्यग्दर्शनकी व्याख्या 'सर्व गुणांश वह सम्यक्त्व' ऐसा भी कहा है। इस व्याख्यामें गुणभेदको गौण करके, सभी गुणोंको अभेद-विवक्षाकी मुख्यतासे कथन किया है। सभी गुणोंकी निर्मलताका अंश वह सम्यक्त्व कहा है, सभी गुण तो मलिन हुए नहीं है, आत्मामें अनंत गुणों हैं वे सभी विकाररूप परिणमित हुए नहीं है; किन्तु अल्प ही विकाररूप परिणमित हुए है और कोई गुणोंका तो ऐसा स्वभाव है कि वे कदापि विकाररूप परिणमित होते नहीं है और सर्वदा शुद्ध ही रहते है। अस्तित्व, द्रव्यत्व, प्रमेयत्व आदि गुणों शुद्धरूप ही परिणमित होते है। इस प्रकार कुछ गुण तो शुद्ध ही होने पर भी 'सर्वगुणांश वह सम्यक्त्व' ऐसा कहा, उसका कारण यह है कि जो गुण शुद्धरूप ही परिणमित होते हैं उन गुणोंके स्वभावको भी अज्ञानी जीव पहिचानता नहीं है, क्योंकि उन गुणोंके स्वभावको पहिचाने तो गुणी आत्माके स्वभावको भी पहिचाने। जीव जब सम्यग्दर्शन प्रकट करता है तब उसे पूर्ण स्वभावकी प्रतीति होती है और इसलिये वह अभेदरूपसे आत्माके सर्व गुणोंको जानता है, इसलिये उसके सभी गुण निर्मल परिणमित होते है ऐसा कहा है। चाहे कुछ गुण तो पूर्वमें अज्ञानदशाके समय भी शुद्धरूप परिणमित होते थे लेकिन अज्ञानदशामें वर्तते जीवको उसकी खबर नहीं थी और ज्ञानदशा होने पर मालूम पड़ा (-प्रतीति हुई) इसलिये उस जीवके ज्ञानकी अपेक्षासे तो सभी गुणोंकी निर्मलता नई प्रकट हुई—ऐसा कहा जाता है अथवा तो पूर्ण आत्मा ही नूतन प्रकट हुआ ऐसा भी कहा जाता है।

युवा-विभाग

(इस विभागके अंतर्गत मुमुक्षुओंकी पूज्य गुरुदेवश्रीके साथ रात्रिके समय चर्चा हुई, वह दी जा रही है।)

प्रश्न :–रागादिककी तथा ज्ञानकी उत्पत्ति एक ही क्षेत्र और एक ही समयमें होती है, फिर इन दोनोंकी भिन्नता किसप्रकार है?

उत्तर :–जिस समय और जिस क्षेत्रमें रागादिककी उत्पत्ति होती है, उसी समय और उसी क्षेत्रमें ज्ञानकी उत्पत्ति होती होनेसे अज्ञानीको भ्रमसे वे दोनों एक ही प्रतीत होते हैं; फिर भी वे रागादिक और ज्ञान स्वभावसे भिन्न-भिन्न ही हैं, एक नहीं। बन्धका लक्षण रागादि है और चैतन्यका लक्षण जानना है। इस प्रकार दोनोंके लक्षण भिन्न हैं। रागादिकका चैतन्यके साथ एक ही समय और एक ही क्षेत्रमें उपजना होता है; वह चैत्य-चेतक, ज्ञेय-ज्ञायकभावकी अति निकटतासे होता है, किन्तु एक द्रव्यपनेके कारण नहीं। जिस प्रकार प्रकाशमें आते हुए घटपटादि पदार्थ प्रकाशपनेकी प्रसिद्धि करते हैं, घटपटादिकी नहीं; उसीप्रकार जाननेमें आते हुए रागादिकभाव आत्माके ज्ञायकपनेकी ही प्रसिद्धि करते हैं; रागादिक की नहीं। कारण कि दीपकका प्रकाश दीपकसे तन्मय है, इसलिये प्रकाश दीपककी प्रसिद्धि करता है। ज्ञान भी आत्मासे तन्मय होनेसे आत्माको प्रकाशित-प्रसिद्ध करता है, रागादिकको नहीं। काम, क्रोधादिभाव ज्ञानमें ज्ञात होते हैं, वे वास्तवमें रागादिकको नहीं प्रकाशते; क्योंकि रागादि ज्ञानमें तन्मय नहीं है, किन्तु रागादिकसे सम्बन्धित ज्ञान अपने ज्ञानको प्रकाशित करता है। चैतन्य स्वयं प्रकाशकस्वभावी होनेसे परसम्बन्धी अपने ज्ञानको प्रकाशता है, परको नहीं प्रकाशता। पहले कहा कि आत्मा परको प्रकाशित करता है, वह व्यवहारसे बात की थी; किन्तु वास्तवमें देखा जाय तो आत्मा परसम्बन्धी अपने ज्ञानको ही प्रकाशित करता है।

समस्त जगतकी वस्तुएँ ज्ञानप्रकाशमें आ नहीं जाती और ज्ञानप्रकाश भी जगतकी वस्तुओंमें चला नहीं जाता। जगतकी वस्तुयें हैं, उन सम्बन्धी अपनी परप्रकाशकता ज्ञानप्रकाशको ही प्रकाशित करती है। इससे सिद्ध हुआ कि बन्धरूप रागादिका और प्रकाशस्वरूप ज्ञानका लक्षण भिन्न होनेसे उनमें परस्पर एकत्व नहीं है। उन दोनोंके स्वलक्षण भिन्न-भिन्न जानकर भगवती प्रज्ञाछैनीको उन दोनोंकी अंतरंगसंधिमें पटकनेसे अर्थात् ज्ञानको आत्माके सन्मुख करनेसे रागसे भिन्न चैतन्यके अतीन्द्रिय आनन्दका अनुभव होता है। (क्रमशः) ✻

है विधिषेध वस्तु और प्रतिषेध रूपं,
जो जाने युगपत् है प्रमाण स्वरूपं;

प्रौढ व्यक्तियोंके लिए जानने योग्य प्रश्न तथा उत्तर

दिये गये विकल्पोंमेंसे योग्य विकल्प पसंद करके रिक्त स्थानकी पूर्ति किजीये।

(१) पदार्थके यथार्थ स्वरूपकी सिद्धि ..... से हो सकती है।
(मोक्षमार्ग, अनेकांत, नय)

(२) मुनिराज ..... के लिये आहार लेते हैं।(आयुवृद्धि, क्षुधाकी उपशांति, शरीरवृद्धि)

(३) सम्यग्दर्शनकी प्राप्ति ..... से होती है। (प्रमाणज्ञान, नय, द्रव्यदृष्टि)

(४) दर्शन मोहनीय कर्मका बंध ..... गुणस्थानमें होता है। (प्रथम, दूसरे, एकसे तीन)

(५) जीव जहाँसे आता है वहाँ वापस नहीं जा नहीं सकता है वह ..... है।
(इतरनिगोद, सिद्धशिला, नित्यनिगोद)

(६) जीवोंके क्रोधरूप परिणाममें कालद्रव्य वह ..... निमित्त है।
(उदासीन, प्रेरक, बाह्य)

(७) वर्तमान अशुद्ध पर्यायका स्वीकार किये बिना मात्र स्वयंको एकांत परमात्मा मानना वह ..... का स्वरूप है। (व्यवहाराभासी, निश्चयाभासी, उभयाभासी)

(८) जिनकल्पी, स्थविरकल्पी, अपवादमार्गी और उत्सर्गमार्गी ये ..... के प्रकार है। (अविरत सम्यग्दृष्टि, श्रावक, मुनि)

(९) पूज्य गुरुदेवश्रीका जीवनमंत्र ..... था। (ब्रह्मचर्य, व्रत-तप, पुरुषार्थ)

(१०) २२ परिषहजयमें ज्ञानकी अधिकता होने पर भी मान नहीं करना वह ..... परिषहजय है। (प्रज्ञा, अलाभ, अज्ञान)

(११) सौधर्म वह ..... देवका प्रकार है। (कल्पवासी, अनुदिश, अनुत्तर)

(१२) छह प्रकारके आहारमें मनोआहार ..... को होता है। (तीर्थंकर, देव, नारकी)

(१३) तीर्थंकर नामकर्म प्रकृति बंधके लिये सोलहकारण भावनामें मुख्यतया ..... भावना है। (निरंतर ज्ञान उपयोग, त्याग तथा तप, दर्शन विशुद्धि)

(१४) नव तत्त्वमें मोक्षतत्त्व वह ..... स्वरूपसे है। (द्रव्य, पर्याय, गुण)

(१५) इन्द्रियजन्य सुख विपक्षनी उत्पत्तिवाला होनेसे ..... है।
(सप्रतिपक्ष, अक्षुब्ध, अविच्छन्न)

(१६) आत्माके मोह-क्षोभ रहित परिणाम वह वास्तवमें ..... है।
(संयम, चारित्र, ज्ञानका क्षयोपशम)

(१७) ऋषिके चार भेदमें विक्रिया अक्षीण ऋद्धिके धारकको ..... कहते हैं।
(राजऋषि, देवऋषि, परमऋषि)

(१८) कुंदकुंद आचार्यदेव रचित पांच परमागममें परमार्थ प्रतिक्रमणका विस्तारसे कथन ..... शास्त्रमें दिया है। (पंचास्तिकाय, नियमसार, अष्टपाहुड)

(१९) ''दर्पणमें जैसे प्रतिबिम्ब पड़ता है उस समय उसकी निर्मलता होती है, वैसे विभाव परिणामके समय भी तेरे परिणाममें निर्मलता भरी है'' यह बात पूज्य बहिनश्रीके वचनामृत बोल ..... में कही है। (१०२, ९४, ८६)

(२०) मोक्ष प्राप्तिके लिये ..... गुणस्थान अनिवार्य है। (छठवाँ, चौथा, दूसरा)

छोटे बच्चोंके लिए प्रश्नोत्तर

(रिक्त स्थानकी पूर्ति किजीये।)

(१) परम पूज्य श्री कानजीस्वामीकी माताका नाम ..... था।

(२) रात्रिभोजनमें असंख्य ..... जीवोंकी हिंसा होती है।

(३) पूज्य बहिनश्रीको ..... वर्षकी उम्रमें सम्यग्दर्शन..... गाँवमें हुआ था।

(४) सोनगढ़से २५किलोमीटर दूर ..... सिद्धक्षेत्र है।

(५) परम पूज्य श्री कानजीस्वामी ..... खंड़में तीर्थंकर होनेवाले है।

(६) पूज्य बहिनश्री चंपाबेनको ..... वर्षका जातिस्मरण था।

(७) समवसरणमें दर्शन करते खडगासन प्रतिमा ..... देवकी है।

(८) सर्प चिह्न ..... भगवानका है।

(९) वानर चिह्न ..... भगवानका है।

(१०) रावणके हाथीका नाम ..... था।

(११) महावीर भगवानके समवसरणमें ..... गणधर आनेके बाद ही दिव्यध्वनि खिरी थी।

(१२) देशभूषण-कुलभूषण आदि मुनि ..... परसे मोक्ष गये हैं ।

(१३) पूज्य बहिनश्री चंपाबेनके माताका नाम ..... था।

(१४) पूज्य गुरुदेवश्रीके ..... आचार्य उपकारी गुरु थे।

(१५) भक्तामर स्तोत्र ..... आचार्यने लिखा है।

(१६) अक्षयतृतीयाके दिन ..... मुनिको सर्वप्रथम आहारकी प्राप्ति हुई थी।

(१७) परम पूज्य गुरुदेवश्रीने परिवर्तन ..... गाँवमें किया था।

(१८) चंद्रप्रभ भगवानका चिह्न ..... है।

(१९) द्रव्यलिंगी जीव ..... ग्रैवेयक तक जा सकता है।

(२०) भगवान ..... दोषसे रहित होते है ।

बालकोंके लिये दिये गये प्रश्नोंके उत्तर

(१) उजमबा	(६) असंख्य अबज	(११) गौतम	(१६) ऋषभनाथ
(२) त्रस	(७) कुन्दकुन्दाचार्य	(१२) कुंथलगिरि	(१७) सोनगढ
(३) १८, वांकानेर	(८) पार्श्वनाथ	(१३) तेजबा	(१८) अर्ध चंद्र
(४) शत्रुंजय	(९) अभिनंदन	(१४) कुन्दकुन्दाचार्य	(१९) नववीं
(५) धातकी	(१०) त्रैलोक्यमंडन	(१५) मानतुंगाचार्य	(२०) अठारह

'आत्मधर्म' (हिन्दी)के स्वामित्वका विवरण
फोर्म नं. ४, नियम नं. ८

समाचार पत्रिकाका नाम	:	आत्मधर्म
प्रकाशन तारीख	:	हर मासकी पाँचवीं तारीख
प्रकाशक एवं मुद्रकका नाम-पता	:	नविन पोपटलाल शाह, ७०१-७०२, आविष्कार टावर, चंदावरकर क्रोस रोड, बोरीवली (वेस्ट) मुंबई
राष्ट्रियता	:	भारतीय
प्रकाशनस्थान	:	श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट, मु. सोनगढ, ता. शिहोर, जि. भावनगर
स्वामित्व	:	श्री दिगंबर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट, सोनगढ-३६४२५०
सम्पादक	:	रमेशचंद्र व्रजलाल शाह, सोनगढ
मुद्रणस्थान	:	स्मृति ऑफसेट, १३-कहानवाडी, अंकुर स्कूल रोड सोनगढ-३६४२५०

मैं हसमुखभाई पोपटलाल वोरा एतद् द्वारा घोषित करता हूँ कि मेरी अधिकतम जानकारी एवं विश्वासके अनुसार उपर्युक्त विवरण सत्य है।

ता. १-३-२०२५

निवेदक : हसमुखभाई पोपटलाल वोरा,
अध्यक्ष : श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट,
सोनगढ-३६४ २५०

सुवर्णपुरी समाचार :—

अध्यात्मतीर्थ सुवर्णपुरीका धार्मिक वातावरण अनंत उपकारमय पूज्य सद्गुरुदेव श्री कानजीस्वामी एवं उनके अनन्य भक्त पूज्य बहिनश्री चंपाबेनके कल्याणवर्षी पुण्यप्रतापसे, आशीर्वादसे देव-गुरु-शास्त्रकी, धर्मकी आराधनामय रहता है एवं पं. रत्नश्री हिंमतभाई जे. शाहने बनाये हुए सुमधुर काव्यसे वातावरण भक्तिमय रहता है :—

प्रातः : ६-३० से ६-५० : पूज्य बहिनश्रीकी धर्मचर्चाकी ऑडियो-टेप

सुबह : ८-४५ से ९-४५ : परमागम श्री समयसार पर पूज्य गुरुदेवश्रीका (१८वीं बारका) सीडी प्रवचन

दोपहर : ३-०० से ४-००: श्री नियमसार पर पूज्य गुरुदेवश्रीका टेप प्रवचन

दोपहर : ४-०० से ४-३० : श्री जिनेन्द्र भक्ति

रात्रि : ७-४५ से ८-४५ : श्री पुरुषार्थसिद्धि उपाय पर पूज्य गुरुदेवश्रीका सीडी प्रवचन

* मानस्तंभका ७३वाँ वार्षिक प्रतिष्ठा दिन *

चैत शुक्ला-१० ता. ७-४-२०२५, सोमवारके दिन सोनगढके श्री मानस्तंभके प्रतिष्ठाका ७३वाँ वार्षिक दिन पूजा-भक्तिके विशेष कार्यक्रम सह मनाया जायेगा।

* पूज्य बहिनश्रीका जातिस्मरण वार्षिक दिन *

चैत कृष्णा-८ ता. २१-४-२०२५, सोमवारके दिन पूज्य बहिनश्रीका जातिस्मरणका वार्षिक दिन है। यह प्रसंग पूजा-भक्तिके विशेष कार्यक्रम सह मनाया जायेगा।

भगवान श्री महावीर जन्मोत्सव तथा पूज्य गुरुदेवश्रीका ९१वाँ संप्रदाय परिवर्तन महोत्सव

भगवान श्री महावीरका जन्मकल्याणक महोत्सव एवं पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामीका 91वाँ संप्रदाय परिवर्तनका महोत्सव चैत्र शुक्ला 13 ता. 10-4-2025 गुरुवारके दिन सुवर्णपुरीमें विशेष पूजन-भक्तिपूर्वक स्टार ऑफ इन्डियावाले स्व. श्री हीराचंदभाई त्रिभोवनदास दामाणी परिवारकी ओरसे अत्यंत आनंदोल्लासपूर्वक मनाया जायेगा। यह मंगल प्रसंग पर सभी मुमुक्षुओंको सोनगढ पधारनेका हार्दिक निमंत्रण है।

प्रौढके लिये दिये गये प्रश्नोंके उत्तर

(१) अनेकान्त
(२) क्षुधाकी उपशांति
(३) द्रव्यदृष्टि
(४) प्रथम
(५) नित्य निगोद
(६) उदासीन
(७) निश्चयाभासी
(८) मुनि
(९) पुरुषार्थ
(१०) प्रज्ञा
(११) कल्पवासी
(१२) देव
(१३) दर्शन विशुद्धि
(१४) पर्याय
(१५) सप्रतिपक्ष
(१६) चारित्र
(१७) राजऋषि
(१८) नियमसार
(१९) ८६
(२०) छठवाँ

बृहद् मुंबई दिगम्बर जैन मुमुक्षु मंडल, (मुम्बई) द्वारा

गुरुभक्ति सह अध्यात्मसाधना तीर्थ सुवर्णपुरीमें मनाया जा रहा है

अध्यात्मतत्त्व विभाकर, शुद्धात्मदृष्टा,

जिनशासन दिवाकर विदेहीधर्मदूत,

ज्ञायकयुगप्रवर्तक, स्वानुभूति संपन्न

परम पूज्य सद्गुरुदेवश्री कानजीस्वामीका १३६वाँ

मंगल जन्मजयंती महोत्सव

अत्यन्त हर्षोल्लास सह निवेदन है कि–हमारे परम-तारणहार परमोपकारी पूज्य सद्गुरुदेव श्री कानजीस्वामीका आगामी १३६वाँ वार्षिक मंगल जन्मोत्सव अध्यात्म-साधनातीर्थ सुवर्णपुरी (सोनगढ़)में बृहद् मुम्बई दिगम्बर जैन मुमुक्षु मंडल (मुंबई)की ओरसे अति आनन्दोल्लासपूर्वक मनाया जानेवाला है।

तदनुसार पूज्य गुरुदेवश्रीकी आगामी १३६वीं जन्मजयन्ती (वैशाख शुक्ला दोज)का मंगल महोत्सव सुवर्णपुरीमें ता. २५-४-२०२५, शुक्रवारसे ता. २९-४-२०२५, मंगलवार–पाँच दिवसीय 'श्री वर्तमान चतुर्विंशति जिनपूजा', पूज्य गुरुदेवश्रीके आध्यात्मिक सी.डी.–प्रवचन, प्रशममूर्ति पूज्य बहिनश्री चम्पाबेनकी विडियो धर्मचर्चा, धार्मिक शिक्षणवर्ग, एवं भजनमण्डली द्वारा देवगुरुभक्ति तथा सांस्कृतिक कार्यक्रम इत्यादि अनेकविध रोचक कार्यक्रम सह मनायी जायेगी। साथमें भव्य जिनमंदिरोंके दर्शन-पूजन, जंबूद्वीप एवं श्री बाहुबलीजीके दर्शनका भी लाभ मिलेगा।

गुरुभक्तिके इस अनुपम अवसरसे लाभान्वित होनेके लिये गुरुभक्त सब मुमुक्षुओंको सोनगढ़ पधारनेके लिये हमारी ओरसे हार्दिक निमंत्रण है। आवास एवं भोजनव्यवस्था निःशुल्क रखी गई है।

[यह महोत्सवकी निमंत्रण पत्रिकाकी लेखनविधि सोनगढमें ता. २३-०३-२०२५ रविवारके दिन है। सभी मुमुक्षुओंको सादर निमंत्रण है।]

निमंत्रक —

बृहद् मुम्बई दिगम्बर जैन मुमुक्षु मंडल (मुंबई)के

जय-जिनेन्द्र

पूज्य गुरुदेवश्रीके हृदयोद्‌गार

• (आत्मा) स्वयं त्रिकाल-शक्तिमान है। गुणरूप त्रिकाली-शक्ति व पर्याय अर्थात् वर्तमान-दशा-ऐसे द्रव्य-गुण-पर्यायके विचारपूर्वक निजपदको जानना होता है; निमित्त अथवा राग द्वारा जानना नहीं बतलाया है। इस प्रकार निजपदको जाननेकी विधि बतालायी है। उपयोगमें जाननस्वरूप-बस्तुको जाने, अन्तरमें जानने-देखनेके होने वाले व्यापार द्वारा वस्तुको जाने, कि वस्तु ज्ञायक है; वही निजस्वरूपको जाननेकी कला है, इसीका नाम धर्म है। चलती पर्यायमें जाननस्वरूप-वस्तुको जाने कि जाननेवाला स्वभाव, नित्यानन्द पदार्थ है—वह आत्मा, पर्यायका आधार अथवा नाथ है।६७९।

• अनुभव-प्रकाशका अर्थ कया? आत्माका निजानन्दस्वरूप है, उसकी पर्यायमें होनेवाले पुण्य-पाप तो वेष हैं—उनकी रुचि छोड़कर स्वभावका अनुभव करना — यही अनुभव-प्रकाश है।६८०।

• निर्विकल्प कहो या आत्मानुभव कहो—दोनों एक ही हैं। जीवकी शक्ति तो तीन-काल व तीन-लोकको जाननेकी है। उसमें ज्ञान ज्ञानका वेदन करे उतना ज्ञानका विकास हुआ, वह (विकसित) अंश ही सर्वज्ञ-शक्ति प्रकट करेगा। सर्वज्ञ-शक्ति तो त्रिकाल है, उसका वेदन हुआ है। सर्वज्ञ-शक्तिके आधारसे ही स्वसंवेदन होता है। पुण्य-पापके आधारसे ज्ञान नहीं होता।६८१।

• प्रत्येक पदार्थ सर्वत्र, सर्वकाल अपने ही द्रव्य-क्षेत्र-काल-भावमें प्रतिष्ठित रहता है; पर-चतुष्टयमें नहीं। इस एक महासिद्धान्तका निर्णय हो जाए तो त्रिकाल व त्रिलोकवर्ती समस्त पदार्थोकी यथार्थ प्रतीति हो जाए और स्वतंत्र-ज्ञानानन्द-स्वभाव-सन्मुख होनेकी रुचि व स्थिरता हो जाए—यही सुखी होनेका उपाय है।६८२।

• पदार्थ, द्रव्यरूपसे नित्य है व पर्यायरूपसे अनित्य है। ऐसी नित्यानित्यता तो पदार्थका स्वरूप है—ज्ञान ऐसा जानता है। संयोगके कारण अनित्यता है—ऐसा नहीं है; पर अपने कारणसे ही अनित्यता है, अर्थात् पलटते रहना तो पर्यायका स्वभाव है सो परके कारणसे नहीं है। इस प्रकार ज्ञेयका स्वरूप-जानना ही सम्यग्ज्ञानका कारण है।६८३।

• आत्माकी शांतिरूप-प्रकाशको अनुभव कहते हैं। आत्मामें शान्ति व आनन्द शक्तिरूपसे, अनादि-अनन्त विद्यमान हैं। ऐसे आत्माका पुण्य-पाप रहित अनुभव हो उसे धर्म कहते हैं। अकषाय-परिणाम के प्रकाश को अनुभव-प्रकाश कहते हैं।६८४।

३६
आत्मधर्म
मार्च २०२५
अंक-७, वर्ष १९

Posted at Songadh PO
Publish on 5-3-2025
Posted on 5-3-2025

Registered Regn. No. BVR-368/2024-2026
Renewed upto 31-12-2026
RNI Registration No. GUJHIN/2006/18882
वार्षिक शुल्क 9=00 आजीवन शुल्क 101=00

Printed & published by Navin Popatlal Shah on behalf of shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust and Printed at Smruti Offset, 13, Kahanwadi, Ankur School Road At-Songadh Pin-364250 and published from Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust At-Songadh, Ta. sihor, Dist. Bhavnagar Pin-364250.

Editor : Rameshchandra Vrajlal Shah.

If undelivered Please return to :—
Shri Dig. Jain Swadhyay Mandir Trust
SONGADH-364 250 (INDIA)
Phone No. (02846) 244334
Fax (02846) 244662

www.kanjiswami.org
email : contact@kanjiswami.org